स्वराज्य-सोपान ।

लेखक—

श्रीयुत पंडित भगवतप्रसाद शुक्ल ।

—:०:—

प्रकाशक—

सुलभ ग्रन्थ-प्रचारक मण्डल,

१२, शङ्कर घोष लेन,

कलकत्ता ।

मैनेजर,
साहित्योदय पुस्तकालय,
इलाहाबाद.

प्रथम संस्करण]   सं० १९७९   [मूल्य १)

Printed by M. P. Seth, at the Balkrishna Press,
13, Shankar Ghose Lane, Calcutta.

समर्पण-पत्र ।

स्वर्गवासिनी सौभाग्यवती श्रीमती भगवती देवी की

पवित्र आत्मा को प्रेम-पुष्पांजलि स्वरूप

"स्वराज्य-सोपान"

सादर तथा सप्रेम

समर्पित ।

शोक सन्तप्त पति—

भगवत प्रसाद शुक्ल ।

प्रस्तावना ।

समस्त संसार के कल्याण के लिये इस वर्ष के भीतर ही भारतवर्ष का स्वतन्त्र हो जाना परमावश्यक है। भारतवर्ष का प्राचीन कालसे ही, विश्वभारती को सन्मार्ग पर लाने की सेवा करने का गौरवयुक्त लक्ष्य रहा है। परतन्त्रता की दृढ़ शृङ्खला से आबद्ध रहने के कारण यह अपने महदुद्देश्य की पूर्त्ति करने में असमर्थ है। यदि इस देश को शीघ्र ही स्वतन्त्र होने का अवसर नहीं मिलता तो न केवल समस्त संसार की उन्नति में बाधा पहुंचती है वरन् विश्व के उन्नति-पथ-प्रदर्शक सुहावने और विमल प्राकृतिक नियमों की भी हत्या होती है। इसलिये भारतवर्ष को अपने प्राचीन गौरव की रक्षा करने के लिये तथा संसार को इस विवाद और विपद्ग्रस्त अवस्था से मुक्त करने के लिये अविलम्ब स्वतन्त्र हो जाना चाहिये।

भारतवर्ष ने स्वतन्त्र होने के महदुद्देश्य से प्रेरित हो शान्तिपूर्ण असहयोग की जो शरण ली है वह समयोचित और भारत के योग्य ही है। इसी एक ज़बरदस्त उपाय के अवलम्बन से भारतवर्ष शीघ्र ही स्वतन्त्र होगा। इस में तिलमात्र भी सन्देह नहीं।

प्राचीन भारत की एक हलकी झलक, वर्तमान अधोपतित अवस्थाका धुंधला खाका और हमारे कर्तव्य की सरल तथा महत्वपूर्ण विधिगति इस छोटी सी पुस्तक में बतलाने की मैंने धृष्टता की है। भारत की दासता की कड़ी ज़ञ्जीरों को तोड़नेमें यदि पाठकों ने इससे ज़रा भी लाभ उठाया तो मैं अपने इस परिश्रम को सफल समझूँगा।

देशका एक तुच्छ सेवक,

छिन्दवाड़ा (मध्यप्रदेश) }
१५-६-२१। }

भगवतप्रसाद शुक्ल।

स्वराज्य-सोपान ।

(१)

संसार के इतिहास-पृष्ठों को उलटने से पता चलता है कि जिस समय आधुनिक सभ्य देश अज्ञानान्धकार की घोर निन्द्रा के वशीभूत हो खुर्राटे भर रहे थे उस समय भारतवर्ष के सौभाग्य--सूर्य की स्वर्णमयी मधुर किरणें समस्त संसार को आलोकित कर रही थीं। विद्या, बल, सम्पत्ति, कला-कौशल और संसार की आँखों को चौंधिया देने वाली श्रेष्ठ सभ्यता रूपी अनेक सुख-सौन्दर्य-पूर्ण नदियां भारत-समुद्र में आ मिली थीं। इनके समागम से अद्वितीय प्राकृतिक सौन्दर्यागार भारत समस्त संसार का सब बातोंमें, गुरू बन बैठा था। उस समय के भारत की सभ्यता और श्रेष्ठता की संयुक्त श्री-द्युति के सामने इन्द्रपुरी का सुख-सूर्य भी फीका जान पड़ता था।

जिस समय यह देश स्वतन्त्र, समृद्धिशाली तथा सुशिक्षित था उस समय अपने जीवन की समस्त आवश्यकताओं को पूरी कर यह अन्य देशों की भी अधिकांश आवश्यकताओं को पूर्ण करता था। इस विश्व में, सूर्य के नीचे, ऐसा कोई भाग्यशाली देश नहीं जो भारतवर्ष का किसी न किसी रूपमें ऋणी न हो। किसी ने यहां के साहित्य का सहारा ले अपने स्वतन्त्र और सभ्य-श्रेष्ठ कहलाने वाले साहित्य-भवन का निर्माण किया है, किसी ने यहां की युद्ध-विद्या का सहारा ले इस समय संसार को छका देने वाले नाना प्रकार के भयङ्कर और खूंखार वैज्ञानिक युद्धास्त्रों का आविष्कार किया है और किसी ने यहां की जगद्विख्यात पवित्र राजनीति के सहारे अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये परोपकार और न्याय का ढोंगी जामा पहन मक्कारी और दग़ाबाज़ी से दूसरों का समूल नाश कर स्वार्थप्रधान सुदृढ़ राजनैतिक चक्रव्यूह बनाया है। सारांश यह कि प्राचीन भारत के सर्वश्रेष्ठ कलाकौशल और साहित्य की नक़ल करने से ही आधुनिक सभ्य संसार अपनी निस्सार भौतिक उन्नति कर सका है।

भारत की वर्तमान शोचनीय अवस्था के वास्तविक कारणों को भली भाँति समझने के लिये हमें उसके अतीत इतिहास की ओर एक दृष्टि अवश्य डालनी होगी। इसी इतिहास के द्वारा हम को इस बात के समझने में सहायता मिलेगी कि किन किन परिस्थितियों के उपस्थित होने के कारण इस देश में ऐसा भीषण परिवर्तन हुआ।

हिन्दू-राजत्व काल में यह देश इतना अधिक सुखी और सन्तुष्ट था कि जिसकी समता आधुनिक किसी भी सभ्य देश से नहीं की जा सकती। यहां का शासन सदा प्रजा की इच्छानुसार होता था। स्वाधीन और शक्तिशाली होते हुए भी भारतीय शासक स्वेच्छाचारी न थे। ये बड़े प्रजावत्सल थे। अपने स्वार्थ के लिये प्रजा के गले पर छुरी चलाना इन लोगों ने सीखा ही न था। यदि इनके धन-धाम स्त्री-पुत्र-कलत्र तक के त्यागने से प्रजा का लाभ हो सकता था तो ये लोग खुशी से इस माया और ममता को भी लात मारने को तैयार रहते थे। प्रजावत्सल हिन्दू राजाओं के समय में यह देश धन-धान्य से सदा परिपूर्ण रहता था। विद्या का यहां ज़रा भी अभाव न था।

सरस्वती के पवित्र मन्दिर में प्रवेश करने के लिये किसी को भी किसी प्रकार की असुविधा न थी। लक्ष्मी-पुत्र, निर्धन, ब्राह्मण, शूद्र, सब पक्षपात रहित विद्या प्राप्त करने के समान अधिकारी समझे जाते थे। सारी प्रजा को सुशिक्षित बनाने के लिये राजा लोग राजकोष से प्रचुर सम्पत्ति व्यय करते थे। इसी कारण देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक ढूंढ़ने पर भी कोई अशिक्षित न मिलता था। आज कल संसार में ऐसी कोई भी विद्या विद्यमान नहीं जो उस समय यहां प्रचलित न रही हो। विज्ञान और चिकित्साशास्त्र में इस देश ने जो उन्नति की थी, अभी तक उसका मुकाबिला किसी देश ने करके नहीं दिखलाया है। भारतवर्ष ने अजेय आध्यात्मिक शक्ति के प्रताप से जो असीम आश्चर्यजनक आविष्कार सब बातों में, कर दिखाया है उस को आधुनिक सभ्य कहलानेवाला भौतिक संसार न अभी तक कर सका है और न भविष्यमें उसके करसकने की ही आशा है।

समस्त विद्याओं में ही नहीं, भारतवर्ष ने व्यापार में भी बड़ा नाम कमाया था। यहां का व्यापार मुसलमानी राजाओं के काल तक उन्नति की

उच्चतम सीढ़ी पर आरूढ़ रहा। संसार में ऐसा कोई देश न था जहां भारतवर्ष ने व्यापार न किया हो। यहां की चीजें इतनी अच्छी और सस्ती बनती थीं कि संसार के सब देश के बाज़ारों में इन की चाह होती थी। अन्य देशवासी यहां की चीजों को बड़े चावसे ख़रीदते थे। यहां यह बात स्मरण रखना चाहिये कि भारतवर्ष ने किसी देश का ज़बरदस्ती गला घोंट कर अपने व्यापार की उन्नति नहीं की थी। जिस प्रकार यहां के व्यापारी अन्य देशों में व्यापार करते थे, उसी प्रकार दूसरे देशों के व्यापारियों को भी यहां आकर व्यापार करने की पूर्ण सुविधा और स्वतन्त्रता थी। यह दूसरी बात है कि अन्य देशवाले अज्ञानी और असभ्य होने के कारण इस देश से व्यापार न कर सके हों। जिस प्रकार भारत ने अन्य देशवासियों के लिये यहां आकर स्वतन्त्र रूप से व्यापार करने का दरवाज़ा खोल रखा था, कुछ समय के पश्चात् उन्हीं देशों ने भारतवासियों को वहां जाकर व्यापार करने की ज़रा भी स्वतन्त्रता न दी। इस बातका विस्तृत और सप्रमाण वर्णन आगे किया जायगा।

वस्त्र-व्यवसाय के सदृश ही भारतवर्ष नौ-व्यवसाय केलिये भी प्रसिद्ध था। वैदिक काल से लेकर मुसलमानी काल तक यह व्यवसाय यहां बड़ी अच्छी तरह से चलता रहा। बड़े छोटे सब प्रकार के जहाज यहां बनते और दूर दूर के देशों में बिकने के लिये जाते थे। युक्त कल्पतरु में भिन्न भिन्न भारतीय नौकाओं की जो लम्बाई चौड़ाई दी है उससे यह स्पष्ट है कि भारत में यह व्ययसाय बहुत उन्नति कर चुका था। *

नाम	लम्बाई (क्यूबिट्समें)	चौ० (क्यू०में)	उंचाई (क्यू०में)
क्षुद्रा	१६	४	४
मध्यमा	२४	१२	८
भीता	४०	२०	२०
चपला	४८	२४	२४
पटला	६४	३२	३२
भया	७२	३६	३६
दीर्घा	८८	४४	४४
पत्रपुटा	९६	४८	४८
गर्भरा	११२	५६	५६

* श्रीयुक्त प्राणनाथजीके भारतीय सम्पत्तिशास्त्रके आधारपर।

मन्थरा	१२०	६०	६०
जौपाला	१२८	१६	१२$\frac{४}{५}$
धारिणी	१६०	२०	१६
वेगिनी	१७६	२२	१७$\frac{२}{३}$

पञ्जाब की सिन्धु नदी में उपर्युक्त आकार की नौकाएँ हज़ारों की संख्या में रहा करती थीं सिकन्दर ने जिस समय भारतवर्ष पर आक्रमण किया था, उस समय उसने यहीं से दो हज़ार नौकाएं प्राप्त की थीं। महाराज चन्द्रगुप्त के काल में जल-सेना तथा नौका प्रबन्ध के लिये एक पृथक ही सभा रहा करती थी। अन्ध्र-कुशान काल में, जब कि भारत का व्यापार रोम के साथ प्रारम्भ हुआ तब, यहां के नौ-व्यवसाय को बहुत ही अधिक उत्तेजना मिली थी। गुप्त और हर्षवर्धन के समय तक भी यह नौ-व्यवसाय पूर्ववत् हरा भरा बना रहा। कालिंग के पूर्वीय राज्यों में ऐसे बहुत से शिला लेख मिले हैं जिन से विदित होता है कि उस समय राजा लोग पोत-विद्या को खूब उत्तेजना देते थे। मुसलमानी राज्य में भी इस देश का नौ-व्यवसाय अच्छी उन्नति पर था।

सिन्ध का प्रसिद्ध बन्दरगाह दीवाल-चीनी तथा यूरान के व्यापारियों का केन्द्र था। चीनी जहाज़ भड़ोंच ठहरते हुए दीवाल जाते थे। बलबन ने सामुद्रिक पोतों के द्वारा ही बङ्गाल को विजय किया था। अकबर के समय में बङ्गाल के निम्न लिखित स्थान व्यवसाय के लिये प्रसिद्ध थे :—

(१) सन्द्वीप (२) दूधाली (३) जहाजघाट (४) चाकरती (५) टण्डा (६) बल्क (७) श्रीपुर (८) सोनार गोयात (६) सन गोयात (१०) घौर

घाटनगर चिरकाल से बङ्गाल में नौ-व्यवसाय का केन्द्र था। यहां के कुछ उत्साही व्यापारियों ने अपने जहाजों के द्वारा सूस तक यात्रा की थी और रेशम का माल बेचा था। औरङ्गजेब के समय तक भारतीय नौ-व्यवसाय को उन्नति तथा उत्तेजना मिली। जिस समय अंग्रेज लोग भारतवर्ष में आये उसी समय यहां का नौ-व्यवसाय नष्ट किया गया। मिस्टर टेलर ने अपने 'भारतीय इतिहास' में लिखा है कि "हिन्दुस्तानी जहाज जब लन्दन नगर में पहुंचे, उसी समय अंग्रेज कारीगरों में हलचल मच गई। इन लोगों ने भारतीय जहाजों को देखते ही अपने

सत्यानाश को ताड़ लिया। वे कहने लगे कि भारतीय जहाजों के कारण अब उन्हें भूखों मरना पड़ेगा। सन् १८१३ में इंगलिस्तान के अन्दर इस प्रश्न ने भयङ्कर रूप धारण कर लिया। उसी समय से अंग्रेजी राज्य ने अपनी यह स्थिर नीति बना ली कि अब भविष्य में भारतीय नौ-व्यवसाइयों को किसी प्रकार की सहायता न दी जायेगी। इसका परिणाम यह हुआ कि कई सहस्र वर्षों का फला फूला हुआ नौ-व्यवसाय अंग्रेजों के समय में सर्वदा के लिये नष्ट हो गया।

भारतवर्ष का शिल्प तथा चित्रण व्यवसाय भी संसार में अपना सानी नहीं रखता था। अशोक के स्तम्भ, जँगलें, लाटें तथा स्तूपों को जिन कारीगरों ने बनाया था उन्हीं की सन्तानों तथा वंशजों ने मुसलमानी समय की बड़ी बड़ी इमारतों को बनाया था। ताजमहल, हुमायूं का मकबरा और आगरा तथा दिल्ली के किले भारतीय शिल्पियों के शिल्प के ही नमूने हैं। शिल्प के सदृश ही भारतीय चित्रण-व्यवसाय ने भी अपूर्व उन्नति प्राप्त की थी। अकबर

के दरबार में निम्न लिखित चित्रकार प्रसिद्ध थे : —

(१) ताब्रीजके मीर सय्यद् अली।

(२) ख्वाजा अब्दुस्समद्।

(३) दश्यन्थ।

(४) बसवान।

(५) केशु।

(६) मुकुन्द।

(७) जल।

(८) मुश्किन।

(९) फ़र्रुख़।

(१०) फाल्भक।

(११) मधु।

(१२) जगन।

(१३) भदेश।

(१४) क्षेमकरण।

(१५) तारा।

(१६) सन्तुल्लाह।

(१७) हरिवंश।

(१८) राम।

इन चित्रकारों की आमदनी का इसी से पता लगाया

जा सकता है, कि अकबर ने रज्मनामा नाम की पुस्तक को छ लाख रुपये में खरीदा था। जहाँगीर के समय में तो चित्रकला ने अकबर के जमाने से भी अधिक उन्नति की थी। पूर्व काल में चित्रकारों की इतनी अधिक इज्जत होती थी कि राजा महाराजा तक उन के साथ मित्रवत् व्यवहार करते थे। हिन्दू राजाओं के समय में राजपूताने में भी शिल्पियों तथा चित्रकारों का अच्छा नाम था। उन को उच्च पद दिये जाते थे। कलकत्ता के राजकीय पुस्तकालय में फारसी की एक हस्तलिखित पुस्तक है उस में ताजमहल बनानेवाले शिल्पियों के मासिक वेतन का ब्योरा इस प्रकार दिया है:—

प्रथम श्रेणी के शिल्पी	१०००)
द्वितीय ,, ,,	८००)
तृतीय ,, ,,	४००)
चतुर्थ ,, ,,	२००)

भारतीय शिल्पकारी की अलौकिकता और विचित्रता का पता पूर्व समय में सुराष्ट्र प्रायद्वीप के दक्षिण में स्थापित सोमनाथ की मूर्ति से लगता है। जिस समय

सन् १०२३ में महमूद गजनवी ने इस मूर्ति पर आक्रमण किया था उस समय वहाँ के पुजारियों की लड़ाई में जीत लेने के पश्चात् उस ने इस मूर्ति के तोड़ने का यत्न किया, परन्तु अनेक प्रकार के पाशविक बल का प्रयोग करने पर भी उसे न तोड़ सका। मूर्ति को निरावलम्ब खड़ी देख कर उस के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। जब अनेक यत्न करने पर भी वह मूर्ति तोड़ने में सफल न हो सका, तब उस ने अप ने नजूमियों से उस के तोड़ने का उपाय पूछा। नजूमियों ने विचार कर बतलाया कि इस मूर्ति के बनाने में चुम्बक की सहायता ली गई है। चुम्बक के अलग होने पर मूर्ति आप से आप पृथ्वी पर गिर पड़ेगी। इस बात के जानने पर महमूद ने उस मन्दिर की एक दीवाल तुड़वाई। उस दीवाल के टूटते ही मूर्ति उस ओर जरा सी झुक गई। इसके पश्चात् उस ने मन्दिर का कलश तुड़वाया। कलश के टूटते ही मूर्ति पृथ्वी पर गिर कर चूर चूर हो गई। इस मन्दिर का अवशेष चिह्न, कुछ दरवाजे, यहां की कारीगरी की स्मृति सदा जीती जागती रखने के

लिये सन् १८४२ में आगरा लाये गये, जो इस समय भी आगरा के किले में मौजूद हैं। उन की शिल्प-चातुरी देख आज भी जी चाहता है कि उन के बनानेवालों का हाथ चूम लें।

भारतीय स्त्रियों तक ने चित्रण तथा शिल्पकला में ऐसी कुशलता तथा दक्षता प्राप्त की थी कि उनकी कारीगरी को देखकर सारा संसार स्तम्भित तथा चमत्कृत हो जाता था। क्या कला, क्या कौशल, क्या विद्या, क्या वैभव, क्या सुख, क्या सभ्यता सभी बातों में भारत ने हद कर दी थी। परन्तु इस परिवर्तनशील धरा पर कोई भी भौतिक पदार्थ सदा एकसा नहीं रह सकता। जिस प्रकार दिन के पश्चात् रात्रि का समागम होता है ठीक उसी प्रकार भौतिक उन्नति और अवनति भी हुआ करती है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है; "चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च।" भला जिस भारतवर्ष ने उन्नति के उच्चतम प्रासाद में आरूढ़ होकर सुख और स्वातंत्र्य का अनुपम रसास्वाद चखा है वह सदा एक ही अवस्था में कैसे रह सकता था! अटल प्राकृतिक नियमानुसार उस को भी शिर झुकाना पड़ा। अनेक प्रकार

के सुख भोग कर उसको भी परतन्त्रता की दृढ़ शृङ्खला में आबद्ध होकर दुःख की भयङ्कर खाईं में गिरना पड़ा। अंग्रेजों के राज्यकाल के प्रारम्भ होते ही यहां की समस्त श्री नष्ट हुई। जिस भारतवर्ष में एक समय सौभाग्य-सूर्य बड़ी शान से चमक चमक क्रीड़ा कर रहा था, वह अस्ताचलगामी हुआ और यहां अमावस्या की घनांधकारमयी रजनी का साम्राज्य स्थापित हो गया। अस्तु।

भारत को विशेषतया व्यापार ने ही समुद्र के उस पार प्रख्यात किया था। इस देश को सोने की खान जानकर पन्द्रहवीं शताब्दी में यहां व्यापार करने की इच्छा से पोर्चुगीज़, डच, फरांसीसी और अंग्रेज लोग आये। अपनी कूटनीति के सहारे अंग्रेजों ने व्यापार के साथ ही साथ कौशल से यहां अपने राज्य की भी जड़ जमाना प्रारम्भ कर दिया। अन्त में सन् १७५७की प्लासी की लड़ाई जीतने के पश्चात् अंग्रेजों के राज्य का खम्भा यहाँ मज़बूती से जम गया। व्यापारी जाति (Nation of shop-keepers) होने के कारण धन कमाना ही इन लोगों का राज्य करने का एक मात्र उद्देश रहा। व्यापारी जाति का मनोवांछित लाभ

दूसरी जाति के व्यापार करते हुए कभी नहीं हो सकता। इस लिये इन्हों ने सब से पहले भारतीय व्यापार को नष्ट करने का संकल्प कर लिया। राजशक्ति का ज़बरदस्त अस्त्र इनके पास था ही। इसकी सहायता से इन्हें अपने मनोभिलषित उद्देश को पूरा करने में पूर्ण सहायता मिली। किस कौशल से अंग्रेजों ने भारतवर्ष के व्यापार की हत्या की, इस का कुछ थोड़ासा हाल हम अपने पाठकों को बतलाते हैं।

यह बतलाने की विशेष आवश्यकता नहीं है कि भारतवर्ष का पहले से इंग्लिस्तान के साथ बड़ा घनिष्ट व्यापारी सम्बन्ध था। भारतवर्ष में अकेले इंग्लिस्तान से ही सन् १७०८ से १८२५ तक में व्यापार द्वारा ४२६०१००००) रु० आये। अंग्रेज लोगों से अपने देश का इतना रुपया भारतवर्ष में आते हुए न देखा गया। उन्होंने बड़ा शोरगुल मचाया और अन्त में अपने यहां भारत का कपड़ा आना रोक ही दिया। इंग्लिस्तान की सरकार ने भारत के वस्त्र-व्यवसाय को रोकने के विचार से सामुद्रिक बाधक कर का निर्माण किया। यदि कोई व्यापारी

वहां जाकर कपड़ा बेचना ही चाहे तो वह सामुद्रिक बाधक कर देकर बेच सकता था। इस सामुद्रिक बाधक कर के लग जाने से भारतीय व्यवसाइयों को वहां जाकर व्यापार करने में लाभ के स्थान में बहुत हानि होने लगी। इस हानि से बचने के लिये उन्हें विवश हो इंग्लिस्तान के साथ व्यापार करने से अन्तिम नमस्कार करना पड़ा। सन् १८१३ से पूर्व तक भारतीय वस्त्रों पर इंग्लिस्तान में राज्य की ओर से जो सामुद्रिक बाधक कर लगे थे उस का ब्यौरा इस प्रकार है :—

भारतीय पदार्थ	इंग्लिस्तान में सामुद्रिक कर १५०००) रु० के मालपर
छीट	१०२५) रु०
मलमल	२६०) रु०

रंगीन वस्त्र बेचना बिलकुल बन्द।

सन् १८१३ में यही सामुद्रिक कर इस प्रकार और भी बढ़ाया गया।

भारतीय पदार्थ	इंग्लिस्तान में सामुद्रिक कर १५०००) रु० के माल पर
छीट	११७५) रु०
मलमल	४६०) रु०

रंगीन वस्त्र बेचना बिलकुल बन्द।

भारतीय वस्त्र-व्यवसाय के इंग्लैंड में बन्द हो जाने पर वहां के व्यवसाइयों ने स्वयं ही कपड़ा बनाना प्रारम्भ किया। अंग्रेजों का अभिप्राय केवल इतना ही न था कि वे भारतवासियों का वस्त्र अपने यहां न आने दें वरन् वे चाहते थे कि भारतवासी भारत में भी अपना बनाया हुआ कपड़ा न बेच सकें। सर्वत्र विलायती माल ही बिके। उन लोगों का यह विचार केवल उसी अवस्था में पूर्ण हो सकता था जब कि भारतीय कपड़ा बनाने वालोंका पूर्ण रूप से सत्यानाश हो जाता। हुआ भी ऐसा ही। अंग्रेज लोग किस प्रकार भारत के व्यवसाय को नष्ट करने पर उद्यत थे इसका थोड़ा पता सन् १८४० के दो अंग्रेजों की निम्नलिखित बातचीत के मर्मांश से लग जावेगा। *

मान्टगोमरी मार्टिन—हमलोगों ने गत २५ वर्षों से भारतवासियों को अपना बनाया हुआ माल खरीदने के लिये विवश किया है। हम लोगों के

---

* श्रीयुत महादेव एच देसाई के Bombay chronicle में प्रकाशित "How India's Industry was ruined" नामक लेख के आधार पर।

ऊनी कपड़ों पर किसी प्रकार का भी कर निर्धारित नहीं किया जाता, हम लोगों के सूती कपड़ों पर केवल २॥ प्रति शत कर निश्चित किया गया है। इधर हम लोगों ने भारतीय व्यवसाय रोकने के लिये उन लोगों के माल पर १० से लेकर १००० प्रति शत कर लगा दिया है। अर्थात् १००) रुपये के माल पर भारत वासियों से १० से लेकर १०००) रु० तक कर के रूप में वसूल किये जाते हैं। १००) रु० का माल और उस पर १०००) रु० कर, गज़ब हो गया! आज कल यहाँ भारतवर्ष के साथ स्वतन्त्र व्यापार करने के लिये लोगों ने आवाज उठाई हैं। सच पूछो तो स्वतन्त्र व्यापार हो ही रहा है। इस देश का जो व्यापार भारत में होता है वह तो स्वतन्त्र है ही। उस पर नाममात्र केलिये ज़रा सा कर लगाया गया है। भारत का इस देश में जो व्यापार होता है वह वास्तव में स्वतन्त्र नहीं। उस को रोकने के लिये भयंकर कर लगा दिया गया है। भारतीय व्यवसाय के सूरत, ढाका मुर्शिदाबाद प्रभृति केन्द्र स्थानों का जिस प्रकार नाश और अधःपतन हुआ है, उस को स्मरण करने से बड़ा दुःख होता है। मेरी समझ में

व्यापारिक दृष्टि से इस विषय में न्याय नहीं किया गया। यहां "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली उक्ति चरितार्थ की गई है।

ब्राकलहर्स्ट—इस देश का कल्याण किसी न किसी देश के जुलाहों का अधःपतन हुए बिना कैसे हो सकता था। भारतीय जुलाहों का अधःपतन हमारे लाभ के लिये ही हुआ है। क्या अब आप इस देश का गला घोंट कर भारतवासियों का पुनरुत्थान करना चाहते हैं?

मार्टिन—मैं उसका पुनरुत्थान नहीं करना चाहता। मैं केवल भारत के साथ जो लगातार अत्याचार किया जा रहा है उस को रोकना चाहता हूं। इस से यह बात सिद्ध नहीं होती कि भारतीय व्यवसाइयों के यहाँ आ कर रोज़गार करने देने पर प्रतिद्वन्द्विता न करने के कारण विलायती जुलाहों का नाश होगा। उस का बड़ा ज़बरदस्त कारण यह है कि भारतीय जुलाहों के पास इतनी अधिक प्रचुरता में शक्ति-यंत्र, बुद्धि और मूलधन नहीं है जितना कि ग्लासगो और मैनचेस्टर में है।

ब्राकलहर्स्ट—असली दारमदार तो पूर्णतया अच्छे कपड़ों पर ही है जो शक्ति-यंत्रों के द्वारा कभी बनाये ही नहीं जा सकते। विचारणीय बात यह है कि हमको अपने देशमें उत्तमोत्तम कपड़े बनाना चाहिये या उन के बनाने का विचार ही छोड़ देना चाहिये।

मार्टिन—यदि भारत के साथ अन्याय कर के इस व्यापार को उत्तेजना दी जाती है तो मेरा कहना इतना ही है कि यह सर्वथा अनुचित और निन्दनीय है। परिणाम का जरा भी खयाल न कर के न्यायानुकूल काम करना ही उचित है। इंग्लैंड ने जिस देश पर विजय प्राप्त की है उस को अपने या अपनी जाति के कुछ आदमियों के लाभ के लिये नष्ट कर डालने का कोई अधिकार नहीं है।

ब्राकलहर्स्ट—सन् १८३३ में, जिस समय भारतवर्ष इंग्लैंडके अधीन हुआ, उसी समय उसके कपड़े का व्यवसाय नष्ट हो गया। इस लिये अब उस बात पर विचार करने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं है। जो कुछ होना था सो हो गया। 'गतम् न शोचाम्यकृतम् न मन्ये' पर ही सन्तोष करना

चाहिये। यह बात तो इस समय स्पष्ट प्रकट हो रही है कि भारतवर्ष व्यवसायी होने की अपेक्षा अधिक कृषि-प्रिय है। जो लोग पहले व्यवसाय करते थे वे अब कृषि के उद्योग में लग गये हैं। यदि इस देशमें व्यवसाय बंद कर दिया जाय तो क्या आप सोचते हैं कि यहाँ भी लोग कृषि-कर्म करने लगेंगे?

मार्टिन—मैं यह बात मानने के लिये बिलकुल तैयार नहीं कि भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है। भारतवर्ष जितना कृषि-प्रिय देश है उतना ही व्यवसाय-प्रिय भी है। जो लोग उसे कृषि-प्रधान देश बनाने की चेष्टा करेंगे वे मानो उसकी सभ्यता को ही कुचलने का प्रयत्न करेंगे। मैं यह नहीं चाहता कि भारतवर्ष इंग्लैंड के लिये अन्न उपजाऊ खेत बन जाय। वह व्यवसायी देश है। उसका अनेक प्रकार का व्यवसाय शताब्दियों से होता चला जा रहा है। संसारका कोई भी देश उसको इस बात में ईमानदारी से नीचा नहीं दिखा सका है। इस समय मैं उसके ढाका के मलमल और काश्मीर के शालों की बात नहीं कर

रहा हूं। उसने अनेक प्रकार की ऐसी ऐसी अद्‌-भुत वस्तुएँ बनाई हैं कि जिनका मुकाबिला संसार के किसी भी देशने नहीं किया है। ऐसे देश को कृषक बनाना घोर अन्याय नहीं तो क्या है?

उपर्युक्त बातचीत से पाठकों को यह विदित हो गया होगा कि भारत के उन्नतशील व्यापार से स्वार्थी अंग्रेज़ों को कितना भय था और वे उसके नाश करने के लिये—न्याय्य अन्याय का बिना विचार किये ही—कैसे तुले हुए थे। इस बात की सत्यता पाठक मि० ब्राकलहर्स्ट के विचारों से ही समझ सकते हैं।

सन् १८३३ में चारटर (सनद) बदला गया। इस नई सनद में एक शर्त यह भी रखी गई कि 'ईस्ट इंडिया कम्पनी को अब भविष्य में भारत के साथ किसी भी प्रकार का व्यवसाय न करना चाहिये।' कम्पनी को विवश हो इस शर्त के अनु-सार अपना सब भारतीय व्यापार बन्द कर देना पड़ा। इसके कारण भारतवर्ष के व्यापार को बहुत कुछ लाभ हुआ। इससे उत्साहित होकर समस्त भारतीय व्यवसाइयों ने सन् १८४० में परलीमेंट में एक

दरखास्त भेजी, जिसका आशय यह था कि भारतीय व्यवसाय पर सरकार द्वारा जो असहनीय कर निर्धारित किये गये हैं वे सब के सब हटा लिये जावें। इस दरखास्त पर उचित निर्णय करने के अभिप्राय से 'हाउस आफ कामन्स' ने कुछ विद्वान और योग्य मनुष्यों की एक कमेटी बनाई। इस कमेटी के एक सदस्य मिस्टर ब्राकलहर्स्ट भी थे जिनकी उपर्युक्त बातचीत से पाठक उनकी योग्यता का पता पा चुके होंगे। जिस कमेटी में ऐसे ऐसे स्वार्थी सम्मिलित हों उसका निर्णय क्या हुआ होगा यह हमारे योग्य पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं।

जिस प्रकार इस समय महात्मा गांधी ने विदेशी वस्त्रों का आन्दोलन प्रारम्भ किया है उसी प्रकार का आन्दोलन इंग्लैंड में १८वीं शताब्दी में किया गया था। उस समय इंग्लैंड के अधिकार में भारतवर्ष न था। उस समय भारतीय छीट इंगलैंड में बहुत अधिक प्रमाण में खपती थी। महारानी मेरी ने भी (जो उस समय इंग्लैंड के राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ थीं) भारतीय छीट के प्रचार को खूब उत्से-

जना दी। इस पर अंग्रेज व्यवसाई बहुत असन्तुष्ट और रुष्ट हुए। इन लोगों ने भारतीय वस्त्रों के बहिष्कार का एक बड़ा ज़बरदस्त आन्दोलन किया। उसका परिणाम यह हुआ कि इंग्लैंड की सरकार को ऐसे ऐसे कड़े नियम बनाने पड़े जिससे भारतीय वस्त्रों का व्यापार वहां बन्द हो गया। इस बात का प्रमाण उस समय के इतिहासकार मिस्टर लैकी के "इंगलैंड के इतिहास" से मिलता है।

१७वीं शताब्दी के अन्त में अधिक संख्या में बहुत सस्ते और खूबसूरत कपड़े—छींट मलमल तथा और बहुत से रंग बिरंगे कपड़े—भारत से विलायत भेजे गये। इसकी आश्चर्यजनक खपत देखकर ऊन और रेशम के विलायती व्यवसायी भय-भीत हो उठे। उन लोगों के अथक प्रयत्न करने पर सन् १७०० और १७६१ में पारलीमेंट द्वारा इस आशय के कानून पास किये गये कि किसी भी प्रकार के छींट के तथा अन्य प्रकार के छपे हुए कपड़े न तो यहां बनाये जांय और न उपयोग में ही लाये जाँय। यदि कोई भी स्त्री भारत की पछीटके बने हु कपड़े बरतेगी तो उसको दण्ड दिया

जावेगा। अनेक स्त्रियों को इस कानून के भंग करने के लिये आर्थिक दण्ड दिया गया। सन् १७०६ में एक स्त्री को इस अपराध पर २०० पौंड (अर्थात् ३२०० रु०) जुर्माना किया गया था कि उसके पास फरासीसी सूतका बना हुआ रूमाल पाया गया!

इंग्लैंड स्वतन्त्र देश था। इस लिये वह अपने व्यापार-वृद्धि के लिये मन माने कानून गढ़ सकता था। इंग्लैंड-सरकार को अपने रोज़गार के बढ़ाने की कितनी प्रबल इच्छा थी यह ऊपर बतलाये हुए कानूनों से ही झलकती है। भारतवर्ष पर राज्य-सत्ता स्थापित करने के पश्चात् उसको अपने अभीष्ट सिद्ध करने का मार्ग बिलकुल सुलभ और सुगम हो गया। लगातार ७० या ८० वर्ष तक अंग्रेजों ने भारतीय व्यापार नष्ट करने के अभिप्राय से भारत-वासियों पर जो २ भयंकर अत्याचार किये वे अवर्णनीय हैं। जैसा कि मिस्टर ब्राक्लहर्स्ट ने ऊपर की बातचीत में स्वीकार किया है, न्यायकी उद्दण्डतापूर्वक हत्या करने पर अंग्रेज लोग वास्तव में भारतीय व्यवसाय को नष्ट करने में सफल हुए।

उस समय की दुःखद अवस्था का खाका कोई भी इतनी अच्छी तरह नहीं खींच सका है जैसा कि भारत के एक महान और विश्वसनीय सुपूत मिस्टर आर० सी० दत्त ने खींचा है। अपनी सारी उक्तियों की पुष्टि उन्होंने सरकारी कागज़ों, अंग्रेज यात्रियों और इतिहासकारों के लेखों द्वारा की है। हम उनके विचारों को यहां संक्षेप में वर्णन करते हैं।

"कम्पनी के हाथ में जिस समय थोड़ी सी राजनैतिक शक्ति आई उसी समय से स्वार्थ-परिपूर्ण व्यवसायी-नीति का अवलम्बन किया गया। इस नीति का पीछा उस समय तक न छोड़ा गया जब तक कि उसके द्वारा अनेक रूप में सफलता प्राप्त न कर ली गई। भारतीय व्यवसाइयों को ज़बरदस्ती कम्पनी के कारखानों में काम करने के लिये विवश किया गया। कम्पनी के एजेण्टों ने अधिकार प्राप्त कर जुल्म और ज़बरदस्ती से व्यापार की गुप्त बातें जानने के लिये जुलाहों को बहुत तङ्ग किया। अनेक प्रकार के कौशल-पूर्ण प्रयत्न करने पर इस बात में इन को कुछ सफ़लता भी मिली।

मि० दत्त कम्पनी के गुमाश्तों की करतूतों का विस्तृत वर्णन सरजेंट ब्रेगो के २६ मई सन् १७६२ के एक पत्र से इस प्रकार उद्धृत करते हैं।

"कोई भी सभ्य पुरुष माल खरीदने या बेचने के लिये यहां अपना गुमाश्ता भेज देता है; यह गुमाश्ता प्रत्येक ग्रामनिवासी से उस का माल खरीदने और उसके हाथ माल बेचने का पूरा अधिकारी समझता और उसके (ग्रामनिवासी) इस बात पर राजी न होने पर (असमर्थता के कारण) उसको शीघ्र ही बेत मारने की या जेल की सजा दी जाती है और केवल इतना ही नहीं, उनके साथ इस बात की भी ज़बरदस्ती की जाती है कि जिस माल को कम्पनी के नौकर बेचते या खरीदते हैं, उनका व्यवसाय वे बिलकुल बन्द कर दें। यदि लोग इस बात पर कान न देकर व्यापार करते ही हैं तो फिर उनके साथ शक्ति का प्रयोग किया जाता है और अन्य सौदागरों की अपेक्षा इन अपराधियों से बहुत ही कम मूल्य में चीजें खरीदी जाती हैं और कभी कभी तो मूल्य दिया ही नहीं जाता। यदि मैं इस बात में

हस्तक्षेप करता हूं तो रिपोर्ट कर दी जाती है। इन तथा अन्य अवर्णनीय अत्याचारों के कारण जिनका कि बंगाल के गुमाश्ते नित्य प्रति उपयोग करते हैं, बाकरगंज (बंगाल का एक समृद्धशाली तथा उन्नत जिला) जनहीन होता जा रहा है। बहुत से मनुष्य अधिक सुरक्षित स्थान में रहने के लिये चले जा रहे हैं। जिन बाज़ारों में पहले बहुत सी चीजें मिलती थीं, अब वे सुनसान पड़ी हुई हैं। वहां कुछ भी नहीं मिलता। इन गुमाश्तों के चपरासियों को बेचारे ग्रामनिवासियों पर अत्याचार करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है और यदि जमीनदार कुछ आपत्ति करता है तो उसको भी इसी प्रकार के व्यवहार किये जाने की धमकी देते हैं। पहिले आम कचहरी में न्याय होता था, परन्तु अब प्रत्येक गुमाश्ता ही न्यायाधीश बन बैठा है और प्रत्येक मनुष्य का घर ही कचहरी हो गया है। वे जमींदारों तक को स्वयं सज़ा कर देते हैं और कम्पनी के कारिन्दों के साथ असद् व्यवहार करने का मिथ्या दोष लगा कर उनसे बहुत सा रुपया दण्डस्वरूप वसूल कर लेते हैं।

भारतीय व्यापार को नष्ट करने के पश्चात् इन्हों ने अपने व्यापार की किस प्रकार रक्षा की, यह बतलाने के लिये मिस्टर दत्त उसी समय का एक और पत्र उद्धृत करते हैं। उसका आशय यह हैं : —

"सच्ची बात तो यह है कि एतद्देशीय समस्त वर्तमान आन्तरिक व्यवसाय और कम्पनी द्वारा विचित्र रूप से व्यापार में लगाया हुआ युरोप का धन अत्याचार का जीता जागता एक भीषण दृश्य है। इसका दुःखद परिणाम देशका प्रत्येक जुलाहा और व्यापारी भोग रहा है। कोई भी वस्तु हो जो यहां बनी उन की ही हो जाती है। अंग्रेज लोग बनियन (Banyans) या मुतसद्दी और अपने भारतीय गुमाश्तों की सलाह से यह बात निश्चित करते हैं कि इनलोगों से कौन कौन माल बनवाना चाहिये और उन्हें उसका कितना मूल्य देना चाहिये।...... जिस समय गुमाश्ता किसी औरङ्ग (Aurung—a manufacturing town) अथवा व्यवसायी नगर में जाता है तो वहाँ वह एक निश्चित स्थान में— जिसे वह कचहरी कहता है—अपने चपरासियों के द्वारा दलालों (जिन्हें पैकार कहते हैं)

और जुलाहों को एकत्रित कराता है और इन्हें अपने, मालिकों से प्राप्त रुपयों का कुछ अंश पेशगी दे देता है। साथही उनसे इस प्रकार का एक इकरारनामा लिखवा लेता है कि हम इतनी इतनी चीजें इतने इतने मूल्य पर अमुक समय पर बना कर दे देंगे। ग़रीब जुलाहे इन शर्तों पर रजामन्द हैं या नहीं, इसका जरा भी ध्यान नहीं रखा जाता। कम्पनी के नौकर होने के कारण गुमाश्ता लोग इन से मनमानी शर्तों पर दस्तख़त करा लेते हैं। यदि जुलाहे माल बनाने में असमर्थता बतला कर पेशगी रुपया लेने से इनकार करते हैं तो उन की कमर में रुपया बांध दिया जाता है और उनको बेत मार कर भगा दिया जाता है।........ कम्पनी के गुमाश्तों के रजिस्टरों में कुछ ऐसे जुलाहों के नाम भी दर्ज होते हैं जो कम्पनी के अतिरिक्त और किसी का भी काम नहीं करने पाते। गुमाश्ते लोग दासों के अनुसार इन के साथ अत्याचारपूर्ण और क्रूर व्यवहार करते हैं।

इस मुहकमे द्वारा जो २ बदजातियां की जाती हैं वह विचारशक्ति के बाहर हैं। इन गरीब जुलाहों

को बड़ा भयङ्कर धोखा दिया जाता है। कम्पनी के गुमाश्ते और कपड़ों की परख करनेवाले (जांचेदार) वस्तुओं का जो मूल्य निश्चित करते हैं वह बाजारभाव से १५ से ४० सैकड़ा तक कम रहता है। अर्थात् जो वस्तु किसी भी बाजार में १०० रु० में बिक सकती है वह ६० रु० तक में जबरदस्ती ख़रीदी जाती है। जब ज़बरदस्ती लिखे हुए राजीनामे के अनुसार जुलाहे अपना वचन पूरा नहीं कर सकते तब कम्पनी के एजंट, जिन्हें बंगाल में सर्वत्र मुचुलका (Mutchulcahs) कहते हैं —इन लोगों का सामान ज़ब्त कर अपनी क्षतिपूर्ति करने के लिये बेंच डालते हैं। कच्चा रेशम औंटनेवाले नागोद इस प्रकार के अत्याचार के शिकार बनाये जाते हैं। ऐसे भी उदाहरण मिले हैं कि रेशमी कपड़ा बनाने से बचने के लिये कहीं कहीं इन लोगों ने अपने अंगूठे तक काट डाले हैं।

इस अत्याचार के साथ ही साथ कम्पनी के नौकरों ने देश का सब आन्तरिक व्यापार बिना किसी प्रकार का कर दिये ही करना प्रारम्भ कर

दिया था। जो कुछ भी कर देना पड़ता था वह केवल भारतवासियों को ही देना पड़ता था। इस स्वेच्छाचारिता पर उस समय के नवाब मीर कासिम ने असन्तोष प्रकट किया। उसने एकदम सब लोगों के सारे आन्तरिक कर बन्द कर दिये। इस उदार और परोपकारी कृति की प्रशंसा करना तो दूर रहा, कलकत्ता की कांउसिल इस बात से बहुत क्रुद्ध हुई और जोश में आकर यहां तक कह डाला कि नवाब साहब ने हमारा राष्ट्रीय अपमान कर डाला! मिस्टर दत्त इस समय के कम्पनी के नौकरों के अत्याचारों का प्रदर्शन करने के लिये जेम्स मिल का एक बहुत बढ़िया उदाहरण उद्धृत करते हैं, जिस से इस बात का पूरा पता लग जाता है कि शक्ति-मद में मतवाले हो कर लोग न्याय और लज्जा का किस प्रकार ध्यान नहीं रखते।

"डायरेक्टरों ने भी इस व्यापाराधिपत्य और अत्याचार का पहले विरोध किया था। परन्तु ज्यों ही उनको बंगाल बिहार और उड़ीसा के दीवानों ने राजनैतिक शक्ति प्रदान की, उनकी उदार चित्तवृत्ति में परिवर्तन हो गया और उन लोगों ने

भयंकर से भयंकर अत्याचार करने में भी आना-कानी न की। इस से पता लग सकता है कि राज-शक्ति मिलने पर लोगों की विचारशैली में कितना भीषण परिवर्तन हो जाता है। राजशक्ति की बागडोर हाथों में आते ही इन लोगों को अंग्रेज़ जुलाहों का स्मरण हो आया। १७ मार्च सन् १७६९ के पत्र में कम्पनी ने यह इच्छा प्रकट की कि बंगाल में कच्चे रेशम के व्यापार को उत्साहित करना चाहिये और रेशमी कपड़ों के व्यापार को हतोत्साहित करना चाहिये। कम्पनी ने इस बात की भी शिफारिश की कि रेशमी कपड़ेवालों से जबरदस्ती कम्पनी ही के कपड़े बनवाना चाहिये। उनको घर पर भी कपड़े न बनाने देना चाहिये। इन शिफारिशों पर विचार करने के पश्चात् विलायत की निर्वाचित कमेटी (Select Committee) ने निर्भीकतापूर्वक इस प्रकार कहा था कि "इस पत्र में उत्साहित करने और ज़बरदस्ती करने की पूरी नीति की बंदिश बांधी गई है। इस से बंगाल के व्यवसाय के पूर्णरूप से नाश हो जाने की सम्भावना है। इसका परिणाम यह होगा कि इस व्यवसायी देश की पूरी काया-

पलट हो जावेगी और यह देश विलायत के लिये उपयोगी कच्चा माल तैयार करने का एकमात्र क्षेत बन जायगा।"

भारतवर्ष के साथ इंगलैण्ड की यह नीति अर्ध-शताब्दी से अधिक समय तक रही। सन् १८०४ में बङ्गाल, बिहार, युक्तप्रान्त का अधिक भाग, करनाटक, उत्तरी सरकार, कनाड़ा और मलाबार—जहाँ व्यवसायी जीवन जवानी के उत्कर्ष में फल फूल रहा था—कम्पनी की छत्रच्छाया में आ गये। इस नीति का जो परिणाम हुआ उसका अनुमान इसी एक बात से लगाया जा सकता है कि इन प्रान्तों के निवासी, जो अबतक योरोप के बाजारों में अपने यहाँ का माल भेजा करते थे, अधिकाधिक संख्या में विदेश से माल मंगवाने लगे।" मिस्टर दत्त ने हाउस आफ कामन्स में पेश किये गये एक हिसाब के आधारपर लिखा है कि सन १७९४ में भारत में भेजे हुए कपासके माल का मूल्य १५६ पौंड था। वही सन् १८१३ में बढ़कर १०८८२४ पौंड हो गया। *

*Return to an order of the House of Commons, dated 4th May 1813.

सन् १८१३ की पारलीमेंटरी इन्कायरी जिसके कारण कम्पनीका भारतीय व्यापाराधिपत्य नष्ट किया गया और जिसके कारण सैकड़ों अंग्रेज व्यापारियों को बेकाम हो जाना पड़ा, कम से कम इस बात के लिये तो चिरस्मरणीय रहेगी कि उसमें अच्छी अच्छी मार्के की बातें गवाहियों में खुली थीं। ग्रेम मरसर (Graem Mercer) ने जो इस्ट इण्डिया कम्पनीका डाक्टर था, अपनी गवाही में इस प्रकार कहा था—"लार्ड वेलस्ली ने रूहेलखण्ड में विलायती ऊनी वस्त्रों की एक प्रदर्शनी इस अभिप्राय से की थी जिस से विलायती माल भारतीय बाजारों में प्रख्याति प्राप्त करे।" जान रैंकिङ्ग के इज़हार से जो कि एक व्यवसायी था, पता चलता है कि किस प्रकार 'निषेध कर' द्वारा भारतीय माल विलायत जाने से रोका गया। ६ अगस्त सन् १६२१ के 'कर्मवीर" में 'देशी कपड़े का व्यवसाय कैसे नष्ट हुआ' शीर्षक जो लेख प्रकाशित हुआ है उसे भी हम यहाँ उद्धृत कर देते हैं। पाठक उससे एतद्देशीय व्यशसाय के नष्ट होने का यथार्थ कारण और भी अच्छी तरह समझ जायँगे—

"इण्डिया आफिस के कागज़ात की रिपोर्ट में

लिखा है कि "सन् १७८५ में नाटिङ्घम (विलायत) में कपड़े का कारखाना खुला और दो वर्ष बाद ढाके की मलमल की नक़ल पर पांच लाख थान मोटे और खरखरे कपड़े के तैयार हुए। उस समय विलायत में शोर हुआ कि ढाका के कारीगरों से विलायती कारीगरों की रक्षा की जानी चाहिये। इस लिये ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तान से आने वाले सभी सूती माल की कीमत पर ७५ फी सदी महसूल लगा दिया अर्थात् १००) के माल पर ७५) कर देना पड़ता था। फल यह हुआ कि सन् १७८७ में ढाका से इंगलैंड में जो ३० लाख रुपयों की मलमल गई थी वह महसूल लगानेके बाद घट कर सन् १८०७ में ८॥ लाख रुपयों की ही रह गई; सन १८१३ में ३॥ लाख की और १८१७ में उसका जाना बिलकुल बन्द हो गया।

मिल अपने ब्रिटिश भारत के इतिहास में लिखता है कि "इंगलैण्ड में सन १८१३ तक हिन्दुस्तान का सूती और रेशमी माल इंगलैंड के माल की अपेक्षा ५०–६० फी सदी कम कीमत पर बिकता था। इस लिये इंगलैंड के माल की रक्षा करने के लिये इंगलैंड में आने वाले हिन्दुस्तानी माल पर कीमत

के हिसाब से ७०–८० फी सदी कर लगा कर उसका आना बिलकुल ही बन्द कर दिया गया। ऐसा न किया जाता तो पेज़ली और मैनचेस्टर की नई स्थापित हुई कपड़े की मिलें हिन्दुस्थानी माल के मुक़ाबिले में भाफ़ के बल से भी नहीं चलाई जा सकती थीं।

Useful art and manufactures of Great Britain नामक पुस्तक में लिखा है कि "मलाबार प्रान्त की छींट को इङ्गलैंड में रोकने के लिये अंग्रेज जुलाहों के प्रार्थना करने पर पारलीमेण्ट ने उस छींट पर फी गज डेढ़ आना टेक्स लगाया। दो वर्ष बाद यह टैक्स फी गज तीन आना कर दिया गया और सन् १७२० में क़ानून बना दिया गया कि जो लोग इङ्गलेण्ड में हिन्दुस्थानी छींट बेचेंगे उन पर २००) रु० और जो ख़रीदेंगे उन पर ५०) जुर्माना होगा। हिन्दुस्थान के रेशमी कपड़े और छीटों को रोकने के लिये सन १७०० में क़ानून पास किया गया कि बङ्गाल, चीन, फारिस या ईस्टइण्डीज में बना हुआ रेशम और वहाँ पर रँगी हुई या छपी हुई छीटें २९ सितम्बर सन १७०१ के बाद इङ्गलैंड में न मँगाई जावें और न

पहिनी जावें। उस तारीख के बाद जो माल मँगाया जावेगा वह गोदामोंमें बन्द कर दिया जावेगा या फिर से विदेशों में भेज दिया जावेगा।

इसी प्रकार हिन्दुस्थानी कपड़ों पर सन् १७२१ तक टेक्स बढ़ते गये। उस समय के टेक्सों का विवरण इस प्रकार है:—

माल			टेक्स
कपासका कपड़ा	फी सदी	...	८१)
कपास ...	फी मन	...	१५)
छीट ...	फी सदी	...	८१)
तनज़ेज ...	...	...	३२॥)
चटाई ...	...	...	८४॥≈)
बकरेके ऊनकी चीजें	...	...	८४॥≈)

(२)

हिन्दुस्थान में देशी कपड़े के व्यवसाय की हत्या ।

इंगलैंड में ही हिन्दुस्थानी माल पर कड़ा टेक्स लगा कर अंग्रेज लोग सन्तुष्ट नहीं हुए। परंतु हिन्दुस्थानी कारीगरों को नष्ट करने और भारतमें इंगलैंड के माल का प्रचार बढ़ानेके लिये भी ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने रोमांचकारी अत्याचार किये।

इतिहासकार मिल कहता है कि अंग्रेजों ने प्राप्त की हुई राजनैतिक शक्ति से इङ्गलैण्ड के व्यवसाय की प्रतिद्वन्द्विता में हिन्दुस्थानी व्यवसाय का गला घोंटना शुरू किया। उन्होंने यहां पर अपना माल बिना टेक्स बेचने का अधिकार चलाया और जहां कहीं उन्हें महसूल देना भी पड़ता था, तो उसके मुकाबिले में हिन्दुस्थानी माल पर कई गुना अधिक कर लगाया गया था। "लार्ड बैंण्टिङ्क के समय में इस विषय पर अनुसंधान करने से मालूम हुआ कि अंग्रेजी कपड़े

हिन्दुस्थान में फी सैकड़ा २॥) महसूल देकर बेचे जाते थे पर भारतवासी अपने देश में व्यवहारके लिये जो कपड़े बनाते थे उन्हें फी सदी १७॥ महसूल देकर लेना पड़ता था।"

फ्रांसिस थार्नक ब्राउन नामक अँग्रेज़ ने पारली-मेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा था कि "आगे चल कर हिन्दुस्थानी कपड़े के उद्योग को नष्ट करने के लिये कम्पनी ने जुलाहों के चरखों, कपड़े बनाने के औज़ारों और घरों तक पर कड़ा महसूल लगा दिया।" दूसरे गवाह टामस मनरो ने कहा था कि "बड़ामहल" (बांगाल) में कम्पनी के नौकर, जुलाहों के मुखियाओं को एक स्थान पर इकट्ठे करके उन पर पहरा बैठा देते थे कि जब तक वे केवल कम्पनी ही को अपना माल बेचने का इकरारनामा न लिख दें तब तक नहीं जाने पावें। यदि कोई जुलाहा समय पर माल नहीं दे सकता था तो उसके घर पर चपरासी भेजा जाता था। जितने बार चपरासी जाता था उतने आने जुर्माना उस जुलाहे पर कर दिये जाते थे और उसकी वसूली में उसके पीतल के बर्तन छीन लिये

जाते थे।" मिः काक्स कहते हैं कि "इनके अधिनस्थ फैक्टरी में इस प्रकार के पन्द्रहसौ जुलाहे थे।

श्रीयुत रमेशचंद्र दत्त जिनके 'Economic History of British India' नामक ग्रन्थ में ऊपर के अवतरण दिये हैं एक स्थान पर पारलीमेंटरी रिपोर्ट का अवतरण देते हुए लिखते हैं कि "एक अँग्रेज़ व्यापारी विलियम वोलट्स यहां का अपनी आखों देखा हाल कहते हैं कि "कम्पनी के गुमाश्ते बज़ार दर से ४० फी सदी कम कीमत पर जुलाहों से जबरदस्ती कपड़ा लेते थे। यदि वे मुचलके के अनुसार कपड़ा नहीं दे सकते थे तो उनका सामान उसी वक्त बेचकर कमी पूरी की जाती थी और "कच्चा रेशम निकालने वाले नागोदों के साथ जो अन्याय किया जाता था उसके जो उदाहरण पाये गये हैं उनसे पता चलता है कि उन्होंने (नागोदों) रेशम निकालने के लिए मजबूर किये जानेसे बचने के लिये अपने हाथोंके अंगूठे काट डाले हैं।"

(३)

पहिले की सुखी अवस्था।

कम्पनी की ज्यादतियों से हमारे कपड़े का व्यवसाय नष्ट हो गया। डाक्टर बुकानन ने कम्पनी की आज्ञा से उत्तरी भारत की कारीगरी और वाणिज्य की दशा की जाँच करने के लिये सन १८०७ में पटना और शाहाबाद आदि स्थानों का पर्यटन करके जो रिपोर्ट पेश की थी उसमें कपड़े के बारे में लिखा है कि उस समय पटना जिले में धान १॥।) फी मन मिलता था। वहाँ की आबादी ३३ लाख थी जिनमें ३३०४२६ औरतें सूत कात कर साल भर में १०८१०००) कमा कर अपना पेट भरती थीं।

शाहाबाद में १५६५०० औरतें हर साल १२२००००) का सूत कातती थीं। वहां ७६५० करघे चलते थे और १६०००) के कपड़े बनते थे।

भागलपुर ज़िले में चावल का भाव फी रुपये

३७॥ सेर था। वहाँ ३२७५ करघे टसर बुनने के और ७२७६ करघे सूती कपड़ा बुनने के थे।

गोरखपुर जिले में १७५६०० औरतें चरखों से सूत कात कर अपनी जीविका चलाती थीं और ६१५०००) कमाती थीं वहां पर ६११४ करघे चलते थे। ५०० घरानोंमें रेशम का व्यवसाय होता था। और जुलाहे १६१४०००) केकपड़ेप्रति वर्ष बुनते थे।

बिहार के समान बङ्गाल और दक्षिण के जिलों का भी यही हाल था। परन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने हमारे व्यवसाय और जनता का सर्वनाश करके ही छोड़ा। परिणाम यह हुआ कि हमारे उन्नत नगर और ग्राम उजड़ने लगे और सदा के लिये अकाल ने हमारे देशमें डेरा डाल दिया। ट्रेवेलियन सन १८८० में कहता है कि बंगाल में एक रेशम के समान बिचित्र प्रकारका सूत होता था उससे ढाके की मलमल बनाई जाती थी। वह अब दिखाई नहीं देता। व्यवसाय के नष्ट हो जाने से ढाका की आबादी डेढ़ लाख से घट कर तीस चालीस हजार रह गई है।

इस प्रकार हमारा घरू धन्धा नष्ट हुआ जिसके परिणाम से हम अपना तन ढाकने के लिये भी इंग-

लैंड के मुहताज हो गये। प्रति वर्ष ६० करोड़ रुपये हमारे देश से इंगलैंड जाने लगे और धन्धा न रहने के कारण हमारी जनता भूखों मरने लगी। देश में वर्तमान बरबादी आ गई।..............।"

इस अत्याचार और क्रूरता के साथ भारतीय व्यापार और कला-कौशल के समूल नष्ट करने का परिणाम यह हुआ कि लाखों जुलाहे बेकार होकर भूखों मरने लगे; इन लोगों को समस्त संसार अन्धकार मय प्रतीत होने लगा। काठियावाड़ के लाखों जुलाहे तो कोई अच्छा रोजगार न मिलने के कारण मेहतर हो गये! निस्सहाय तो विचारे थे ही ऐसा न करते तो और करते ही क्या? बहुतों ने किसी न किसी प्रकार उदर पोषण करने के लिये किसानी की शरण ली। किसानी में जो कुछ पैदा होता उससे बेचारे रूखा सूखा खाकर अपनी जठराग्नि शान्त करने लगे। यह सब होने पर भीतर ही भीतर देश में असन्तोष की मात्रा नित्य प्रति बढ़ने लगी। इन लोगों को दृढ़ विश्वास हो गया कि पराधीनता के ही कारण इनकी यह शोचनीय दशा हुई है। इस पराधीनता से छुटकारा पाने के लिये ये उतावले हो

उठे। किसी सुअवसर पर इन लोगों ने एक बार स्वतन्त्र होने के लिए प्राणपन से प्रयत्न करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। अनेक कारणों से कुछ समय पश्चात् भारत में इनका मनोभिलषित परस्थितियां उपस्थित हो गईं। इन लोगों ने इस सुअवसर को हाथ से जाने देना उचित न समझा। सन् १८५७ के प्रसिद्ध बलवे में इन लोगों ने अपने मनोवांछित संकल्पको सफल बनानेका संगठित प्रयत्न किया। परन्तु ग्रहों के सानुकूल न होने के कारण ये लोग विफल मनोरथ हुए। इनको भयङ्कर हार खानी पड़ी। इनका भावी सुखस्वप्न भी इसी समय दूर हुआ। अंग्रेजों ने इस बलवे को दबा कर मानों हाथोंहाथ स्वर्ग पा लिया। उनकी धाक भी इसी समय से भारतवर्ष में पूर्णतया जम गई। बलवे को शान्त करने के लिये भारतवासियों पर अंग्रेजों ने जो जो लोमहर्षण अत्याचार किये उसके यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं। इसके पश्चात् महारानी विक्टोरिया ने भारतवासियों के जले हुए हृदय के घाव पर अपनी प्रसिद्ध घोषणा-मरहम लगाने का प्रयत्न किया। इस घोषणा का भारतवासियों के अधकुचले हृदयों पर कैसा प्रभाव पड़ा

यह बतलाने के लिये हम असमर्थ हैं। हम अपने पाठकों के ज्ञानार्थ उस घोषणा के आशय को बतलाने के लिये उसके अन्तिम अंश का अनुवाद प्रकाशित करते हैं।

"हम अपने एतद्देशीय आधुनिक राज्य को विस्तृत नहीं करना चाहते। जिस प्रकार हम अपने राज्य तथा अधिकारों को सब प्रकार के आक्रमणों से सुरक्षित रखेंगे उसी प्रकार दूसरों के अधिकारों की भी रक्षा करेंगे।

हम भारतीय राजाओंके अधिकार, मान और मर्यादा की पूरी क़द्र करेंगे। हमारी इच्छा है कि इन्हें तथा हमारी प्रजा को उस वैभव और सामाजिक उन्नति का आनन्द लाभ करना चाहिये जो केवल आन्तरिक शांति तथा सुशासन में प्राप्त हो सकती है।

हम भारतीय राजाओं के प्रति धार्मिक बन्धनों में उसी प्रकार आबद्ध हैं, जिस प्रकार अपनी प्रजा के प्रति। उस परम पिता परमेश्वर की कृपा से हम अपने बचनों को बड़ी ईमानदारी और सावधानी से निबाहेंगे।

ईसाईधर्म की सत्यता पर अटल विश्वास रख कर उसकी और धार्मिक महत्ता को भली भाँति समझ कर भी हम अपनी प्रजा को अपने मतानुसार चलने के लिये कभी विवश न करेंगे। अपनी शाही इच्छा और मर्जी से हम यह बात घोषित करते हैं कि किसी भी व्यक्ति के साथ उसके धार्मिक विश्वास या कृत्यों के कारण न तो कभी अनुग्रह ही किया जायगा और न अन्याय या असद्व्यवहार ही। सबलोगों की निष्पक्ष तथा समभाव से न्याया

नुसार रक्षा की जावेगी। हम अपने मातहत नौकरों को सख्त ताकीद करते हैं कि वे हमारी किसी भी प्रजा के धार्मिक विश्वास या पूजा में खलल न दें। यदि वे ऐसा न करेंगे तो हमको असहनीय दुःख होगा।

हमारी यह भी इच्छा है कि हमारी सब प्रजा—चाहे वह किसी जाति की क्यों न हो—शिक्षा,योग्यता और अनुभव के अनुसार सरकारी नौकरी में दाखिल की जावे।

भारतीय राजाओं का अपनी प्रजा के प्रति जो प्रेम और विश्वास है उसका हम पूर्ण आदर करते हैं। उनके मान और अधिकार की हम पूर्ण रक्षा करना चाहते हैं। हम यह चाहते हैं कि कानून बनाने और उनके प्रयोग करने के समय इस

देश के प्राचीन रीति रिवाज का पूरा ध्यान रखा जाय।

हम उन ख़राबियों और बिपत्तियों केलिये हार्दिक पश्चाताप करते हैं जो भारत के कुछ उच्चाभिलाषी मनुष्यों के कृत्यों के कारण यहां घटित हुई हैं। इन लोगों ने झूठी खबरें फैलाकर यहाँ बलवा फैलाया तथा अपने देशवासियों को धोखे में डाला। युद्धक्षेत्र में उस बलवे को दबाने के समय हमारी शक्ति का प्रदर्शन किया जा चुका है। जो मनुष्य अनिच्छापूर्वक कुमार्गगामी बनाये गये थे और अब, जिन्हें अपने कुकार्यों के लिये धार्मिक पश्चाताप हुआ है, हम उनके अपराधों को क्षमा कर उनके प्रति दया दर्शाना चाहते हैं।

हमारे वाइसराय और गवरनर जनरल ने, अधिक खूनखराबी बन्द करने और हमारे भारतीय राज्य में

शान्ति स्थापित करने के विचार से, कुछ शर्तों पर, उन अधिकांश मनुष्यों को क्षमा प्रदान करने का मनोभाव एक प्रान्त में प्रकट किया है, जिन्हों ने गत बलवे में सरकार के विरुद्ध शस्त्र उठाने का अपराध किया है। केवल उन्हीं लोगों को क्षमा न प्रदान की जा सकेगी, जिनके अपराध महा भयङ्कर और अक्षम्य होंगे। हम अपने वाइसराय और गवरनर जनरल के इस विचार से पूर्णतया सहमत हैं और इस विचार की पुष्टि करते हुए आगे इस प्रकार घोषित करते हैं :—

हम उन लोगों के अतिरिक्त जिन्हों ने अंग्रेजों के खून से अपना हाथ रंगा है सब को क्षमा कर देंगे। खून के अपराधों के लिये क्षमा प्रदान करना न्याय के गले पर छुरी चलाना है।

जिन्हों ने जानबूझ कर खून किया है या जिन्हों ने बलवे को उत्तेजित किया और अगुआ बन कर युद्ध किया है, उनकी केवल प्राण रक्षा की जा सकती है। इन लोगों को दण्ड देते समय उन परिस्थितियों का पूर्ण विचार किया जायगा, जिनके कारण ये लोग राजभक्ति के विरुद्ध कार्य्य करने के लिये विवश किये गये हैं। उन लोगों के प्रति विशेष दया दर्शाई जायगी, जिन्हों ने झूठी खबरें पाने पर, जोश में आकर अपराध किया है

हम उन सब लोगों के प्रति जिन्हों ने हमारी राज-मर्यादा को उल्लंघन कर भूल से अस्त्र उठाया है, बिना किसी शर्त के क्षमा और दया प्रदर्शित करते हैं। ये लोग अपने अपने घर लौट कर शान्ति पूर्वक उद्योगधन्धा कर सकते हैं।

यह हमारी शाही इच्छा है कि यह दया और क्षमा उन सब लोगों के लिये लागू की जावे जो पहली जनवरी के पूर्व इन शर्तों को मंजूर कर लें।

जब परमेश्वर की कृपा से आन्तरिक शान्ति पुनः स्थापित हो जावेगी तब भारत के शान्तिमय व्यवसाय की वृद्धि करने, जनता के लाभ और उन्नति से सम्बन्ध रखने वाले कामों पर विशेष दृष्टि रखने और अपनी प्रजा की भलाई के लिये शासन करने को हमारी आन्तरिक इच्छा है। उनके वैभव में हमारी शान्ति उनके सन्तोष में हमारी रक्षा और उनके आनन्द में हमारा सर्वोत्तम पारितोषिक होगा। परमात्मा हम में और हमारे अधिकार प्राप्त नौकरों में वह शक्ति प्रदान करे जिसके

द्वारा हमारी ये इच्छाएं जनता के
लाभ के लिये पूर्ण हों।"

महारानी विक्टोरिया की यह सन् १८५८ की उदार घोषणा अनेक विशेषताओं के कारण भारतीय इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी। महारानी की उपर्युक्त घोषणा से उनके शुद्ध और विशाल अन्तः-करण का पता अच्छी तरह से चलता है। उनकी प्रजावत्सलता की कोई भी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। उनकी इच्छानुसार यदि भविष्य में भी काम किया जाता तो भारतवर्ष कभी ऐसी अधोगतित अवस्था पर न पहुंचता। महारानी विक्टो-रिया ने भारतीय जनता के कल्याण के लिये इस देश के शासन की बागडोर अपने हाथों में ली थी। वे यह बिलकुल नहीं चाहती थीं कि भारतवर्ष के साथ किसी प्रकार का भी अन्याय या अत्याचार किया जाय। परन्तु भविष्य में उनके स्वार्थी नौकरों ने उनकी इच्छा को कार्यरूप में परिणत करने का कभी कष्ट नहीं उठाया। महारानी की यह इच्छा होते हुए भी कि भारतवासी अपनी योग्यता और शिक्षा के अनुसार सरकारी उच्च पदों पर

रखे जांय उनके नौकरों ने सरकारी उच्च पदों का द्वार भारतवासियों के लिये एक प्रकार से बन्द ही कर दिया। जितने सरकारी उच्च पद थे वे अंग्रेजों के लिये ही सुरक्षित रख लिये गये। काला चमड़ा होना ही पाप समझा जाने लगा। अंग्रेजों से लाख दर्जे अनुभवी और योग्य होने पर भी भारत-वासियों का हर जगह अपमान और तिरस्कार होने लगा।

भारतकी स्वतन्त्रता क्या नष्ट हुई उसपर दुःखका पहाड़ टूट पड़ा। कला-कौशल तथा व्यवसायके नष्ट होते ही दारिद्र्यने भी सुअवसर पा इस देशपर बड़ा जबरदस्त आक्रमण किया। सर्वत्र त्राहि त्राहि मच गई। लोग भूखसे तड़पने लगे। करोड़ों मनुष्य आधेपेट भोजन खा जीवन व्यतीत करने लगे। पूरा भोजन न मिलनेके कारण भारतवासि-योंकी शक्ति भी क्षीण हो गई। वे अकालही कालके गालमें समाने लगे। शक्तिहीन होने पर भारत-वासी प्लेग हैजा और इन्फ्लूएंजाके भी आखेट हुए। दरिद्रताके कारण भयङ्करसे भयङ्कर विपत्ति जो इस देश पर पड़ी वह और कहीं भी सुननेमें नहीं आई।

अंग्रेजी राज्यसे भारतवर्षको कुछ लाभ अवश्य हुआ है, परन्तु दिन प्रति दिन बढ़ती हुई भयङ्कर दरिद्रताके सामने वह कुछ भी नहीं है। अंग्रेजोंके आनेसे पहले भारतवर्ष कितना धनवान था, यह निम्न लिखित उदाहरणसे ज्ञात हो जायगा।

जहांगीरने अपने जीवनके इतिहास में लिखा है,—जब जब प्रधान सेनापति मानसिंह मेरे पिता अकबर से मुलाकात करने जाता था तब तब उसको अट्ठारह लाख रुपयों की भेंट देनी पड़ती थी। मानसिंह को एक वर्ष में अकबर से कम से कम दो बार मुलाकात करनी पड़ती थी। जहांगीर का कथन है, कि आगरा शहर के विक्रमजीत के खजानचियों के पास ६०करोड़ रुपये जमा थे। यह चाहे महज कयास ही क्यों न हो परन्तु इससे यह भली भांति जाना जा सकता है कि उस समय आजकल की अपेक्षा कितने अधिक करोड़पती पाये जाते थे।

अपने पिता से प्राप्त किये हुए राजसिंहासन को जहांगीर के और अधिक अलंकृत करने पर तीन करोड़ रुपयों का व्यय हुआ था। उस में बारह हीरे

जड़े थे। प्रत्येक का मूल्य पन्द्रह लाख रुपये थे। आगरा के किले के बनाने में २६ करोड़ २५ लाख रुपये खर्च हुए थे।

जहांगीर के रनिवास और निजी नौकरों का हिसाब सुनने योग्य है। उसका कथन है कि केवल इस मद में उसको पन्द्रह करोड़ बारह लाख रुपये वार्षिक व्यय करने पड़ते थे। जिस समय उसने नूरजहाँ के साथ ब्याह किया, उस समय उसको केवल जवाहर और ४० दाने के मोती का एक हार खरीदने के लिये ७ करोड़ बीस लाख रुपये देने पड़े थे। अपनी एक बहू को उसने ४० मोतियों का एक जड़ाऊ हार उपहार दिया था, जिसका मूल्य १०,००० रुपये था।

उसके मृत भाई दानियल का सामान जब दक्षिण से आगरा लाया गया तब उसकी कीमत का अन्दाजा लगाना कठिन हो गया। अकेले जवाहिरों का ही मूल्य ४५ करोड़ रुपये कूता गया था।

अकबर बादशाहने अपने खजाने का अन्दाजा लगानेकी इच्छासे खिलजी खां को अपने सरकारी खजाने के केवल सोने का हिसाब तैयार करने का

हुक्म दिया था। उसका विवरण जहांगीर ने अपने जीवन चरित्र में यों दिया है,—

खिलजीखां ने आगरा के खजाने में जाकर इस बात के जानने का पूर्ण प्रयत्न किया। उसने शहर के व्यापारियों से ४०० तराजू के जोड़े प्राप्त किये। ये तराजू रात दिन लगातार पांच महीने तक सिक्के और बहुमूल्य धातु तौलने में लगे रहे। इतने दिनों के बाद मेरे पिता अकबर ने यह बात जाननी चाही कि अभी तक कितने मन सोने का हिसाब किया जा चुका है। उसका उत्तर यह मिला कि यद्यपि पूरे पांच महीने तक लगातार एक हजार आदमी रात दिन केवल एक खजाने का माल नापने में लगे रहे, परन्तु अभी तक वे उसको नाप नहीं सके हैं। इस बातके विदित होने पर मेरे पिताने कहा कि बस करो। अब अधिक तर-द्दुद करने को आवश्यकता नहीं। सब जहां का तहां मुहर और ताला लगाकर बन्द कर दो। यह स्मरण रखना चाहिये कि यह केवल एक शहर के खजाने का हाल है।"

जिस समय से इन सौभाग्यशाली अंग्रेजों

का इस दुर्भागी धरा पर पदार्पण हुआ उसी समय से यहां का अपार धन लोप हो चला। धन के साथ ही साथ यहां का गल्ला भी अपरिमित प्रमाण में विलायत जाने लगा। यह देश भूखों ही क्यों न मरता रहे विलायत वालों का पेट अवश्य भरना चाहिये। बेचारे भारत वासी चूं तक नहीं कर सकते। इसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजो के आने के पश्चात् यहां अधिकाधिक अकाल पड़ने लगे। पाठकों को निम्न लिखित विवरण से इस बात का पूरा पता चल जायगा,—

ब्रिटिश राज्य से पूर्व

ग्यारह वीं शताब्दी में			२	अकाल
बारहवीं	"	"	१	"
चौदहवीं	"	"	३	"
पन्द्रहवीं	"	"	२	"
सोलहवीं	"	"	३	"
सत्रहवीं	"	"	३	"
अट्ठारहवीं	"	(१७४५ तक)	४	"

ब्रिटिश राज्य स्थापित हो जाने के पश्चात्।

अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्तिम ३१ वर्षों में ७ अकाल
उन्नीसवीं शताब्दी में .... ३१ ,,
उन्नीसवी शताब्दी के आदि के २५ वर्षों में ५ ,,
(इन अकालों ने दस लाख मनुष्यों की बलि ली।)
अन्त के २५ वर्षों में १८ ,,
(इन अकालों से २६०००००० मनुष्यों की मृत्यु हुई।)

आजकल ग्यारह वर्षों से तो इधर प्रत्येक वर्ष ही अकाल पड़ रहा हैं। इस बात को कौन नहीं जानता।

भारत की इस निर्धनता और अकाल का क्या प्रभाव पड़ा उसका वर्णन कुछ अंग्रेज तथा भारत-वासियों ने इस प्रकार किया है :—

मद्रास के अंग्रेज उपदेशक रेवरेण्ड डुबोइस का सन् १८२० का कथन है :—

"दु:ख की बात है कि बेचारे हिन्दुओं को धर्म-पुस्तकों की इस समय जरा भी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि वे रात दिन क्षुधा-निवारणार्थ अन्न की चिन्ता में लगे रहते हैं। जब पेट खाली और पीठ खुली रहती है, तब अच्छे से अच्छे अंग्रेज भी बाइबिल का ध्यान भूल जाते हैं।"

सर डबल्यु डबल्यु हंटर का सन् १८०० का कथन है :—

भारत में चार करोड़ ऐसे मनुष्य हैं, जिनको पेट भरने के लिये यथेष्ट भोजन नहीं मिलता।"

सर विलियम डिगबी ने Prosperous British India नामक ग्रन्थ में, सन् १९०० में लिखा था:—

"सन् १९०० में किसानों की संख्या छः करोड़ बढ़ गई। यदि भारत की आमदनी जितनी कि १८०० में थी उतनी १९०० में भी हो तो चार करोड़ (सर डबल्यु डबल्यु हंटर के मतानुसार) और पांच करोड़, कुल नौ करोड़ मनुष्य ब्रिटिश भारतमें बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से निरंतर भूखे रहते हैं।"

आर० सी० दत्तका सन् १९०२ का कथन है :—

"भारतवासियोंकी असीम दरिद्रता प्रतिदिन बढ़ती जाती है। सरकारी कागज़ोंके आधारपर हिसाब लगाया गया है कि भारतवर्ष की जनसंख्या का पांचवां भाग या ६ करोड़ मनुष्य, अच्छी फसल होने पर भी भूखों मरते हैं।

आर० सी० दत्तने अपनी Economic History of British India में सन १६०० में लिखा है :—

"ऐसी परिस्थिति में उसकी भयङ्कर दरिद्रता और दुःखमय जीवन का खाका नहीं खींचा जा सकता। उसको फूस की झोंपडी से ठण्ढ और बारिश का जरा भी बचाव नहीं होता। उसकी स्त्रियां कम्बलों से अपना तन ढांके रहती हैं। उसके लड़के तो सदा नङ्गे ही रहते हैं। सामान तो उसके पास कुछ रहता ही नहीं। एक फटा-पुराना घुस्सा ठंढकालमें बड़े आनन्दकी चीज समझी जाती है। यदि उसके बच्चे मवेशियोंको चराकर कुछ आमदनी बढ़ा सके और उसकी स्त्री काम धंधाकर सकी तो वह अपनेको परम सुखी समझता है। इस बातमें जरा भी अत्युक्ति नहीं कि भारतीय किसान पूरे सालभर भूखा रहता हैं।"

मिसेज एनीबेसेण्ट ने लन्दन के डेली हेरल्ड नामक पत्रमें सने १६१६ में लिखा था :—

लगभग आधे भारतवासी केवल एक ही समय भोजन कर सकते हैं और वह भी भर पेट नहीं। प्रत्येक मनुष्यका औसत जीवनकाल केवल २३ वर्ष का है।

वही इङ्गलैण्ड में ४० और न्यूजीलैंड में ६० वर्ष है। यहां वास्तविक भय भूख-विपलव के हो जाने का है। विलायत के प्रसिद्ध डाक्टर सर फ्रेडरिक ट्रेवीस ने भारत में भ्रमण करने के पश्चात् कहा था :—

भारत के असंख्य नरनारी भूखों मरने की अवस्थामें पाये जाते हैं। यह अशक्त जन-समुदाय प्रतिवर्ष अकाल और हैजा का शिकार होता है। प्लेग से बीस हजार मनुष्य एक सप्ताह में मरते हुए पाये गये हैं। हैजा से उसकी दस गुनी संख्या, अर्थात् दो लाख मनुष्य प्रतिवर्ष काल के गाल में जाते हैं। एक समय के अकाल में तो सवा पांच करोड़ मनुष्य मरे थे।"

पञ्जाब के फ़ाइनेशल कमिश्नर एस एस थार-वर्न का कथन है :—

सात करोड़ भारतवासी दरिद्रता की ऐसी शोचनीय अवस्था में हैं कि उनका किसी भी प्रकार उद्धार होना सम्भव नहीं। इस दरिद्रताका मूल कारण भारतीय अन्नका विलायत भेजा जाना ही है। प्लासीके युद्ध के पश्चात् से ही भारतीय अन्न विलायत भेजा जाने लगा है।

बर्क एडम्सने अपने Law of civilization and decay नामक पुस्तक के २०५वें पृष्ठमें लिखा है,—

"शताब्दियों तक अँग्रेज करोड़ों भारतवासियों का धन छीन कर उसी प्रकार विलायत ले गये जैसे कि रोमन लोग ग्रीस और पोंटस का माल इटली ले गये थे। भारत के खज़ाने में कितना रुपया रहा होगा इसका अन्दाज़ा लगाना कठिन ही नहीं वरन् नितान्त असम्भव है।"

बङ्गाल के शासक एफ०जे० शोर का कथन है:—

"अँग्रेजों के राज्य करने का मूल उद्देश्य भारतवासियों को हर एक बात में अपने पर अवलम्बित बनाना ही रहा है। जिन प्रान्तों में इनका अधिकार हुआ है उनपर इन्होंने हद दर्जे का टैक्स लगाया है। प्रत्येक प्रान्त से जितना रुपया खींच सके, खींचा है। इस बात पर हम लोग सदा घमण्ड करते आये हैं कि हम लोग देशी राजाओं की अपेक्षा अधिक कर वसूल कर सके हैं। नीच से नीच अँग्रेज को तो ऊँची से ऊँची सरकारी नौकरी मिल सकती है परन्तु अच्छे से अच्छे भारतवासी को किसी प्रकार की मान-मर्य्यादा या नौकरी नहीं दी जाती।'

एफ० जे० विलसन ने मार्च सन् १८८४ में 'The fortwightly Review' में लिखा था:—

"किसी न किसी रूप में हम उस दुखी देश से प्रतिवर्ष तीस करोड़ पौंड प्राप्त करते हैं। प्रत्येक भारतवासी की औसत आय प्रतिवर्ष दो पौंड हैं। अर्थात् प्रत्येक भारतवासी की मासिक आमदनी २॥) रुपया है। सम्भवतः इससे कम आमदनी और किसी भी देश में न होगी। हम छः करोड़ कुटुम्बियों को अर्थात् तीस करोड़ मनुष्यों की कमाई चूस कर मोटे बन रहे हैं।"

क्रेक हार्डी का कथन है :—

"भूमिके उपज के अनुसार भारतीय किसानों को पचास से लगा कर पचहत्तर प्रतिशत जरलगान देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त उन्हें और भी बहुत से टैक्स देने पड़ते हैं। १००) रु० की आमदनी पर प्रत्येक किसान को ७५) रु० कर के रूप में दे देना पड़ता है। यही कारण है,जिससे भारतवासियों को निरुपाय हो दरिद्रता की चक्की में रातदिन पिसना पड़ता है।"

भारत का प्लेग वास्तव में निर्धनता है। जिन जन्तुओं से यह बीमारी फैली है वह सरकार है। प्रजा के दुर्बल रक्तहीन शरीर में इस प्लेग से बचने की शक्ति नहीं है। यह बीमारी सहज में ही भारतवासियों को अपना ग्रास बना डालती है।

क्रिश्चियन कालेज प्रयाग के प्रोफेसर श्रीयुत पण्डित दयाशङ्कर एम० ए०, एल० एल० बी०, एफ० आर०ई० एस० ने 'भारत के आधा पेट भोजन पाने वालों की संख्या का बड़ी विद्वत्ता पूर्व्वक इस प्रकार निश्चय किया है :—

	आध पेट भोजन पाने वालों की संख्या	प्रति सैकड़ा (ऐसे युवा मनुष्य)
१९११-१२	५४६ लाख	४५.१
१९१२-१३	८८४ ,,	६९.७
१९१३-१४	१०१६ ,,	८३.५
१९१४-१५	७३१ ,,	६०.१
१९१५-१६	४५५ ,,	२७.४
१९१६-१७	३४७ ,,	२९.
१९१७-१८	५४५ ,,	४३ ८
		औसत ५२.७

इस कोष्टक से मालूम होता है कि सन् १९१६-१७ में जो कि कृषि की दृष्टि से बहुत अच्छा वर्ष था, आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या प्रायः ३॥ करोड़ थी। यह संख्या १९१३-१४ में १० करोड़ तक पहुंच चुकी थी। सात वर्ष का औसत निकालने पर ऐसा प्रकट होता है कि ५२.७ फी सैकड़ा युवा मनुष्यों को, या यों कहिये कि देश के आधे जवान स्त्री-पुरुषों को, हमेशा आधा पेट भोजन करके जीवन व्यतीत करना पड़ता है।"

प्रोफेसर दुबे, अनेक कारणों वश, वर्त्तमान वर्ष तक आधे पेट भोजन पानेवाले मनुष्यों का हिसाब नहीं लगा सके हैं। यदि इस समय हिसाब लगा कर देखा जाय तो सम्भवतः भारतवर्ष के कम से कम ७५ फी सदी मनुष्य आधा पेट भोजन पाकर—वह भी अच्छा अन्न नहीं—जीवन निर्वाह करने वाले निकलेंगे।

यह उदार अँग्रेजों के विशेष अनुग्रह का फल है कि भारतवासियों की ऐसी शोचनीय दशा हुई! अंग्रेज़ लोग नैपोलियन बोनापार्ट के कथनानुसार सत्य ही (Nation of shop keepres) "दूकान-

दारों की जाति" हैं। भारतवासियों को भूखों मरते और निर्धनता के कारण तड़पते देखकर भी, इस निर्दयी दूकानदारों की जाति को दया न आई! सच है, जिस समय फरिश्ते रोते हैं उस समय शैतानों को बहुत आनन्द होता है! (Devils dance while angels weep) भारतवासियों को निर्धनता के समुद्र में डूबा हुआ देखकर अंग्रेज पूंजीपतियों ने यहां बहुत से कारखाने खोलना शुरू किये। इन कारखानों में बेचारे भारतीय मजदूर तो जीतोड़ परिश्रम करके खूनका पसीना बहावें और उसका प्रचुर लाभ उठावें अंग्रेज व्यवसायी। समय तेरी बलिहारी है! तू जो चाहे सो कर सकता है। राजा को फकीर और अमीर को गरीब बनाना तेरे बायें हाथ का खेल है। जिस देश के साथ व्यापार की प्रतिद्वन्द्विता में ईमानदारी से किसी ने विजय न पाई, वहां आज अंग्रेजों के हज़ारों कारखाने खुल गये हैं और भारतवासी उनकी गुलामी कर किसी तरह अपने पापी पेट को भर रहे हैं! निम्न लिखित अंकों से पता चल जायगा कि आजकल भारतीय व्यवसाय अंग्रेजों के

हाथ में कितना और हिन्दुस्थानियों के हाथ में कितना है।

उद्योग या कारखाना	संख्या	भारतीय मालिकों के	यूरोपियनों के
बैंक	१९	८	११
पत्थर का कोयला	१३५	१४	१२१
पीसने की कलें	११	०	११
जूट के कारखाने	४६	०	४६
चाय की कम्पनियां	१२४	०	१२४
रेल और ट्राम कम्पनियाँ	४७	१२	३५
रूई और कपड़े की मिलें	७६	४८	२८
चायके खेत (बङ्गालमें)	२७६	३६	२४०
सन के कारखाने	५०	०	५०
सन दबाने के कारखाने	१०९	५२	५७
कलीनेके वर्कशाप	४५	९	३६
नील के खेत (बिहार उड़ीसा)	११९	१४	१०५
रेलवे वर्कशाप (बंबई मद्रास पञ्जाब)	५५	०	५५
चाय (अजमेर मेरवाड़ा आसाम मैसूर)	६०९	६०	५४९

* Capital के २० जून सन् १९१९ के लेख के आधार पर।

सोने की खाने	६	०	६
रबर के कारखाने	१०	०	१०
कहवे के खेत (मद्रास)	१०३	१७	८६
अन्य कारखाने	१३४	२०	११४

गत दो वर्षों में भी कम्पनियों और मिलों की संख्या खूब बढ़ी है। इनसे भी भारतवासियों को हानि के सिवाय लाभ नहीं हुआ है। अधिक संख्या में यहां अंग्रेजों की मिलें और कम्पनियों के खड़े होने का प्रधान कारण यही जान पड़ता है कि जिसमें कच्चा माल बराबर विलायत पहुंचता जाय। इन लोगों के धंधो में जरा भी धक्का न लगने पावे और भारतवर्ष अधिकाधिक गरीब और परावलम्बी बनता जावे। विलायत में ऐसे कई कारखाने हैं जिनमें काम आनेवाला कच्चा माल भारतवर्ष में ही तैयार हो सकता है। इस मालको तैयार करने के लिये भी अंग्रेजों की बहुत सी मिलें और कम्पनियां यहां खुली हैं। यदि भारतवर्ष में कपास की खेती अधिक न की जाय और यदि यहांका कच्चा सूत अधिक परिमाण में विलायत न भेजा जाय तो लंकाशायरकी कपड़े की मिलें एकदम बन्द हो जायँ।

रीडिंग के बिस्कुट के कारखाने भारतसे बिना गेहूं पाये चल ही नहीं सकते। हल्ल और ग्रीम्सबे के तेलके कारखाने बिना भारतके तेलहन गये नहीं चल सकते। भारत और सीलोन (लङ्काद्वीप) का न रियल यदि विलायत न भेजा जाय तो वहाँ मार्गरीनका कारखाना ही बन्द हो जाय। इसी प्रकार यहांके कच्चे चमड़ेकी रफतनी रोक देने पर मिडलैंड के अनेक कारखाने बन्द हो जावेंगे। फलतः एक दो नहीं, सैकड़ों कारखानोंका जीवन भारतीय उद्योग-धन्धोंकी सामग्रियों पर ही अवलम्बित है। अतः विलायती व्यापार रक्षाके लिये, भारतको नितान्त परावलम्बी बनानेके लिये और स्वयं भारतियोंका खून चूस कर मोटे बननेके लिये अंग्रेजों ने भारतीय व्यवसाय में अपनी इतनी अधिक पूंजी लगाई है।

भारतवर्ष छलछद्मका देश नहीं। इस देशमें सत्यता, धर्मपरायणता और न्यायका सदा एकाधिपत्य रहा है। धोखा देना, स्वार्थवश दूसरोंका गला घोटना यहां की नीति कभी न रही। अंग्रेजी राज्य कालमें अनेक अत्याचार और विपत्ति सहते हुए भी भारतवासियोंने अपने धर्मको कभी नहीं छोड़ा। वे

राजाको ईश्वर तुल्य, जैसा पहले मानते थे, अब भी मानते रहे और सर्वदा राजभक्तिकी कड़ीसे कड़ी परीक्षामें भी सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हुए। इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण गत यूरोपीय महा युद्ध के समय सन् १६१४ में मिला। जिस समय यूरोपीय महासमर छिड़ा, उस समय इङ्गलैण्ड की सरकार ने भारतवासियों से धनजन की सहायता मांगी। अपने ऊपर किये जानेवाले अन्यायों का जरा भी ध्यान न कर भारतवासियों ने राजाज्ञा शिरोधार्य की और लाखों जवान योद्धायों ने मेसोपोटामियां और फ्रांस के रणाङ्गण में, इङ्गलैण्ड के फायदे के लिये, हँसते हँसते अपने प्राणों की आहुति दे दी। यदि भारतीय वीरों की सहायता न मिलती तो इङ्गलैण्ड हरगिज लड़ाई जीत न सकता। लाखों मनुष्यों के अतिरिक्त यहां से करोड़ों रुपये भी दिये गये। गरीब भारत इसके अतिरिक्त और भला कर ही क्या सकता था? यदि भारतीय नौकरशाही ने भारतवर्ष के अस्त्रशस्त्र छीनकर पहलेसेही उसे निहत्था न बना दिया होता, यदि उसको अच्छी तरह रण की शिक्षा दी गई होती और यदि उस पर

टर्कों का सुलतान एक साधारण जमीन्दार बनादिया गया ! मुसलमान और अन्यान्य भारतीय जनता इस विश्वासघात को देखकर बहुत क्षुभित हुई। उसने खिलाफत की पूर्ण रक्षा के लिये आन्दोलन प्रारम्भ किया। हिन्दुओं ने भी अपने मुसलमान भाईयों का सहर्ष साथ दिया। बड़ी बड़ी सभायें करके भारतीय जनता ने टर्कों के साथ किये गये अन्यायों पर असन्तोष प्रकट किया और भारतीय सरकार से सादर अनुरोध किया कि वह मुसलमानों की इस विपत्ति में सहायता करे। परन्तु इसका कुछ भी लाभदायक परिणाम नहीं हुआ। इसके पश्चात् ड़े बड़े मुसलमान नेताओं ने विलायत जाकर प्रधान मन्त्री मिस्टर लायड जार्ज को उनके बचनों की याद दिलाई और उनसे प्रार्थना की कि टर्कों के धार्मिक स्थानों पर किसी भी अन्य जाति को कब्जा न दिलाया जाय। परन्तु वह सब अरण्यरोदन के समान हुआ। मुसलमानोंके धर्म-स्थानों पर ईसाइयोंका झण्डा फहराने लगा ! स्वार्थ के सामने करोड़ों भारतीय मुसलमानों के धार्मिक भावों पर पानी फेर दिया गया !

भारतवासियों को आशा थी कि युद्ध के पश्चात्

हमारे साथ न्याय का व्यवहार किया जायगा, हमको सब जगह बराबरी का दर्जा दिया जायगा, काले और गोरे का भेद मिटा दिया जायगा और किसी भी प्रकार हमारा अनादर न किया जायगा। परन्तु इतनी उदारता भला भारतीय नौकरशाही कैसे दिखला सकती थी? भारतवासियों ने गत महायुद्ध में जो सहायता की, उसकी प्रशंसा के पुल तो अवश्य बाँध सकती थी। परन्तु न्यायानुकूल अपने गुलामों से बराबरी का व्यवहार करने को बिलकुल तैयार न हुई। फिर भी; भारतवासी युद्ध में सहायता करने के उपलक्ष में कुछ पुरस्कार पाने की आशा छोड़ न सके। सुअवसर पा भारतीय नौकरशाही ने भारतवर्ष को जो अलौकिक पुरस्कार दिया वह इस देश के इतिहास में सदा बड़े बड़े काले अक्षरों में लिखा रहेगा। हम उस पुरस्कार का यहां बिलकुल संक्षेप में वर्णन कर देते हैं।

अप्रेल सन् १९१९ में एक दिन बैसाखी मेला का उत्सव मनाने के लिये अमृतसर-पञ्जाब के जलियान-वाला बाग में हज़ारों मनुष्य एकत्रित हुए। ये

लोग शान्ति पूर्वक अपने धार्मिक उत्सव मनाने में तल्लीन थे। इसी अवसर पर जनरल डायर नामक एक अँग्रेज फौजी अफसर ने इस शान्त और धार्मिक जन-समूहपर गोलियों की वृष्टि प्रारम्भ कर दी। हजारों मनुष्यों का समूह अकस्मात् गोलियों की बौछारों से घबरा उठा। देखते देखते, क्षण भर में डायरकी गोलियों ने १७०० निशस्त्र मनुष्यों के कलेजों को छेद डाला। मनुष्योंके खूनसे पृथ्वी भींज गई। उस समयके छोटे छोटे बच्चों का चीत्कार, स्त्रियों का भयाकुल रुदन-क्रन्दन और घायल मनुष्यों का तड़पना जिस समय याद आता है, उस समय अब भी हृदय कांप उठता है। सैकड़ों मनुष्यों की हत्या हुई, कितनी ही सौभाग्यवती स्त्रियाँ वेवा तथा सन्तानहीन हुईं, कितनेही पिता पुत्रहीन हुए, पुत्र पिताहीन हुए और सैकड़ों कुटुम्ब निरावलम्ब और निराश्रय हो गये। आकाश में चारों ओर हाय! हाय!! शब्द का चीत्कार प्रतिध्वनित होने लगा! करुणा-समुद्र उमड़ पड़ा। प्रकृति देवी ने भी मानों इस हत्याकांड को देखकर कुछ समय के लिये अपना मुँह ढाँक लिया।

यह लोमहर्षण तथा अमानुषिक हत्याकाण्ड डायर ने क्यों किया ? इस प्रश्न के पूछे जाने पर उस नरपिशाच हत्यारे ने कहा, कि मुझे ऐसा ज्ञात हुआ था कि ये एकत्रित मनुष्य भारतवर्ष में न्यायानुकूल स्थापित ब्रिटिश गवर्नमेंट को समूल नष्ट करनेवाले हैं, इसलिये इनको मैंने जरा भी पूर्व सूचना देना उचित न समझ कर मार डालना ही अच्छा समझा। मेरे तथा मेरे साथियों के पास यदि मसाला न घटता तो मैं अवशिष्ट मनुष्यों को भी हत्या कर डालता! शाबाश बहादुर! शाबाश !! तुम्हारी और तुम्हारी बुद्धि की बलिहारी है! जिन मनुष्यों के हाथ में आत्मरक्षा के लिये लकड़ी तक न हो, जिन सात-सात आठ-आठ बरस के बच्चों को राजविद्रोह क्या चीज़ है, यह मालूम तक न हो, जिन अबला स्त्रियों को अपने धार्मिक उत्सव मनाने के अतिरिक्त और किसी बातका ध्यान तक न हो और जिन पञ्जाबी राजभक्त वीरों को अपने सम्राट की इच्छा पर अपने प्राणतक दे देने में ज़रा भी संकोच न हो, उनसे क्या वास्तवमें अँग्रेजी राज्य के खम्भे के उखड़ जाने की सम्भावना थी? तुमने ऐसे ख़तर-

नाक समय में अँग्रेजी राज्य की रक्षा करके बहुत अच्छा काम किया!

इस भयङ्कर अत्याचार का समाचार समस्त देश में बहुत शीघ्र ही फैल गया। भारतीय जनता इस दुस्सम्बाद को सुनकर अत्यन्त अधीर हुई। इसके पश्चात् पञ्जाब के बहुत से स्थानों में मार्शल ला जारी किया गया। सैकड़ों निरपराध माननीय पञ्जाबी बिना किसी अपराध के जेल-में ठूंस दिये गये। विद्यार्थियों को जेठ की कड़ी धूप में बारह बारह मील तक पैदल चलाया गया! कई विद्यार्थियों को मोटे और बलिष्ट होने के अपराध में बेतों की सजा दी गई। अच्छे अच्छे इज्जतदार और विद्वान मनुष्यों को नङ्गा करके रण्डियों के सामने बेत लगाये गये। पञ्जाबी लोग अँग्रेजों को झुक झुक कर सलाम करने के लिये विवश किये गये। जिस सड़क पर कुछ मनुष्यों ने मिस शेरउड नामक एक अँग्रेज महिला को मारा था उस सड़क से निकलने वाले सब मनुष्यों को जबरदस्ती सांप के सदृश पेट के बल चलाया गया। जिन मनुष्यों ने इस काम के करने में असमर्थता बतलायी उनको

पीठ पर बन्दूक के कुन्दे मारे गये और उनको कोड़े-मकोड़े के सदृश चलने के लिये विवश किया गया! जनरल डायर तथा और दूसरे सरकारी नौकरों पर इन हत्यों के कारण कोई भी मुकद्दमा न चलाया जा सके इस गरजसे भारतीय नौकरशाही ने एक अनोखा कानून रच डाला। उसी समय रौलट एक्ट, सिडीशस मीटिंग एक्ट और बहुतसे ऐसे एक्ट बना डाले गये, जिनका लैजिसलेटिव असेम्बली में, समस्त भारतीय मेम्बरों न एक मत हो तीव्र विरोध किया। परन्तु सुनता कौन था? उस समय तो अँग्रेज लोग मनमाना काम कर रहे थे। लेजिसलेटिव काउन्सिल के बहुतसे मेम्बरो ने इस अन्याय के कारण अपनी अपनी मेम्बरी से इस्तीफा दे दिया।

जनरल डायर ने यह हत्याकाण्ड किया, पञ्जाब के भूतपूर्व लैफ्टिनेण्ट गवर्नर सर माइकल ओडायर ने इस हत्याकाण्ड के होने में सहायता प्रदान की और भारतवर्ष के भूतपूर्व वाइसराय और गवर्नर जनरल लार्ड चेम्सफोर्ड ने इस अत्याचार को उचित माना। इस अत्याचार के होने पश्चात् ही भारत-वर्ष के कोने कोने से डायर, ओडायर और चेम्सफोर्ड

पर खुली अदालत में मुकद्दमा चलाये जाने के लिये आवाज सुनाई देने लगी। अपने अपराधों की जाँच करने के लिये भारत सरकार ने चट हण्टर कमीशन की नियुक्ति की। इस कमीशन के सदस्य अधिकतर खैरख़ाह सरकार रखे गये। उन्होंने काम भी सरकार के इच्छानुसार ही किया। बहुत दिनों तक जांच-पड़ताल करने के बाद यह तय हुआ कि डायर ने जरूर खराब काम किया है। लेकिन वह जान बूझ कर नहीं किया गया। इसमें डायर का अपराध यह है कि उसने सामयिक परिस्थितियों के अनुसार अपने "निश्चय करने में भूल" (Error of Indement) की ।

इङ्गलैण्ड की पार्लिमेण्ट ने भी हण्डर कमीशन के निर्णय को ठीक समझा। अन्त में पार्लिमेण्ट से फैसला यह हुआ कि, भविष्य में जनरल डायर को सरकारी नौकरो में न रखा जाय। उसको पेन्शन दे दी जाय। जिस मनुष्य ने सैकड़ों निरपराध मनुष्यों की हत्या की, जिसका अपराध पूर्ण रूप से सिद्ध हो गया, जिसको अपने भयंकर पापकृत्यों पर जरा भी पश्चात्ताप नहीं हुआ, जिसने पाप

की पराकाष्ठा कर दिखलाया, उसको फाँसी की सजा देना तो दूर रहा, अँग्रेजी न्याय के अनुसार एक दिन की भी सजा न दी गई।

जनरल डायर के इस सुकृत्य पर अधिकांश इङ्गलैण्ड निवासी बड़े खुश हुए। उन्होंने उस जल्लाद की भूरि भूरि प्रशंसा की। पैन्शन मिलने के कारण बिचारे को जो आर्थिक हानि हुई थी उसे पूरी करने के लिये हजारों अँग्रेजों ने लाखों रुपये चन्दा करके उसको भेंट किया! जितना रुपया जिन्दगी भर नौकरी करके भी डायर कमा न सकता, उससे अधिक इस वीर कृत्य के करने से मिल गया! साथ ही साथ साथ उसने वह नाम कमाया जो भारत में तो कम से कम अमिट रहेगा। नाम चाहे भला हो या बुरा इससे कोई मतलब नहीं। भला इससे अधिक लाभ की बात और क्या हो सकती है?

पञ्जाब पर जो घोर अत्याचार और अन्याय हुआ, उसे मिटाने के लिये भारत के नेताओं ने कोई प्रयत्न उठा न रखा। भारत सरकार से बारबार अपील की गई, इङ्गलैण्ड की सरकार से सब प्रकार

अनुनय विनय की गई और जो कुछ भी न्यायानुकूल कार्य्य किया जा सकता था वह सब किया गया परन्तु उसका कोई सन्तोषप्रद परिणाम न हुआ। जनरल डायर इस समय भी स्वतन्त्र होकर लन्दन में मौज उड़ारहा है। सरमाइकल ओडायर और लार्ड-चेम्सफोर्ड इंग्लैण्ड की पार्लिमेंट से सुशासकों की पदवी पाकर अपनेपूर्व कृत्यों पर मन ही मन हँस रहे हैं और पञ्जाब के सैकड़ों निरपराध मनुष्य इस समय भी कारावास के कठिन दुःखों को भोग रहे हैं।

पञ्जाब और खिलाफत के अन्याय के कारण भारतवासियों की, अंग्रेजी न्याय पर रहीसही श्रद्धा भी सदा के लिये उठ गई। भारतवर्ष की परिस्थित में भयङ्कर परिवर्तन देखकर इंग्लैण्ड के कुछ नीति-विशारदों ने भारत को, शान्त करने के लिये कुछ राजनैतिक अधिकार दिये। इन राज-नैतिक अधिकारों से अधिकांश भारतीय जनता बिलकुल सन्तुष्ट न हुई। कुछ भारतीयों ने भले ही इसका स्वागत किया हो परन्तु बड़े बड़े अनुभवी और योग्य भारतीय नेताओं ने इन अधिकारों से जरा भी लाभ न उठाने का संकल्प कर लिया।

उसका परिणाम यह हुआ सुधरी हुई काउंसिलों में (Reformed councils) अधिक योग्य मनुष्य नहीं गये। किसी किसी प्रांत में तो लैजिसलेटिव कौंसिल के मेंबर चमार धाबी और मोची तक हो गये, जिनको अलिफ का नाम तक नहीं आता।

जिन कांउसिलों में स्वर्गीय गोखले का प्राथमिक शिक्षा-बिल पास न हुआ, जिन कांउसिलों में प्रेस एक्ट, रौलट एक्ट, इन्डैम्निटी एक्ट, इण्डिया डिफेन्स एक्ट तथा बहुत से भारत-हित-घातक एक्ट पास हुए, जिन कांउसिलों मैं भारत के अद्वितीय विद्वान नेता लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक के लिये शोक प्रदर्शक प्रस्ताव तक पास न हुआ, उन कांउसिलों से क्या भारत का कभी लाभ हो सकता है? इस बात को अधिकांश भारत वासियों ने स्वीकार किया और इसके अनुसार काम भी किया। स्वराज्य प्राप्त करने का प्रयत्न कांउसिल के बाहर ही करने का निश्चय हुआ।

(६)

पंजाब तथा खिलाफत पर अन्याय होने के पूर्व तक अखिल भारत-वर्षीय कांग्रेस का विश्वास था, कि भारत की भलाई ब्रिटिश गवर्नमेण्ट से प्रार्थना करने ही से हो सकती है। परन्तु इस अन्याय से कांग्रेस के नेताओं को विश्वास हो गया कि अब ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना करने से हमारा कल्याण नहीं हो सकता। जो लोग हमारे साथ न्याय करने के लिये तैयार नहीं, उनसे भलाई की आशा करना बालू पर भीत उठाने के समान है। ईश्वर उनकी अवश्य सहायता करता है, जो स्वयं अपने पैरों पर खड़े होते हैं। स्वराज्य प्राप्त करने के लिये हमको भिक्षा मांगने की आवश्यकता नहीं। हमारे अथक प्रयत्न ही हम को स्वराज्य दिला सकते हैं।

अपनी शक्ति पर पूरा भरोसा करने के पश्चात् सन् १९२० की नागपुर कांग्रेस में असहयोग का प्रस्ताव पूर्ण रूप से पास किया गया। कर्मवीर महात्मा मोहनदास करमचन्द गान्धी के इच्छा-

नुसार समस्त देश काम करने को तैयार हो गया।
महात्मा जीकी इच्छा के अनुसार ही इस वर्ष कांग्रेस के उद्देश्य (Creed)में भी परिवर्तन किया गया। इस वर्ष कांग्रेस का उद्देश्य 'भारत वर्ष के लिये शान्ति-पूर्ण और उचित उपायों द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना रखा गया। अभी तक कांग्रेस का उद्देश्य "ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य प्राप्त करना" था। इस 'साम्राज्यान्तर्गत' शब्द को निकाल देने का यह अर्थ कदापि नहीं कि हम लोग ब्रिटिश छत्रच्छाया के नीचे रहना ही नहीं चाहते। हमारी इच्छा जैसी पहले ब्रिटिश शासन में रहने की थी, वैसी अब भी हैं। स्वराज्य प्राप्त कर लेने के पश्चात् अंग्रेजों का व्यवहार देख कर हम यह निश्चय करेंगे कि ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत रहना चाहिये या नहीं।

भारतीय नौकर शाही की शासन प्रणाली उसी समय तक सुचारु रूपसे चल सकती है, जब तक भारतवासी उसमें सम्मिलित रहें। जिस दिन भारत-वासी नौकरी करना छोड़ देंगे। उसी दिन नौकरशाही का काम चलना असम्भव हो जावेगा। ऐसा कोई मुहकमा नहीं, जिसमें भारत-

वासी न हों ; इसलिये जितने अत्याचार भारतीय नौकरशाही भारत वष के साथ करती है। उसके पाप के भागी अंग्रेजों के समान ही हिन्दुस्थानी भी हैं। इस पाप से बचने का यदि कोई उपाय है तो यही कि नौकरशाही को, शासन कार्य्य में किसी प्रकार की सहायता न दी जाय। जिस समय नौकरशाही का काम रुक जावेगा ; उसी समय उसके होश ठिकाने आ जावेंगे और वह भारतवासियों के इच्छानुसार काम करने को तैयार हो जावेगी। भारतीय नौकरशाही को सुमार्ग पर लाने के अभिप्राय से ही महात्मा गान्धी की इच्छा नुसार कांग्रेस ने असहयोग का प्रस्ताव पास किया। इस प्रस्ताव के पास करने में अंग्रेजों प्रति द्वेष या घृणा का भाव जरा भी न था।

कांग्रेस द्वारा यह शान्तिपूर्ण असहयोग का प्रस्ताव पास करा कर ही महात्मा गांधी सन्तुष्ट न हो गये। देश के कोने कोने में जाकर उन्हों ने लोगों को जगाया और उनसे कांग्रेस के आदेशानुसार काम करने का अनुरोध किया। आदर्श

स्वार्थत्यागी, भारत के उज्ज्वल रत्न, करोड़
भारतवासियों के हृदय-सम्राट् महात्मा गान्धी क
एक एक बात का लोगों पर बड़ा ज़बरदस्त प्रभा
पड़ा। सामयिक कर्त्तव्य-ज्ञान प्राप्त कर अचे
भारतवासी जाग उठे। भारत वर्ष का बच्चा बच्च
स्वराज्य प्राप्त करने के लिये उतावला हो उठा
देश में आशाजनक परिवर्तन हो गया।

कांग्रेस के शान्तिपूर्ण असहयोग प्रस्ताव क
कार्यरूप में परिणत करने का दृढ़ संकल्प कर हजार
विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूल तथा कालेजों क
वहिष्कार कर दिया। वे इन गुलामखानों में रहन
अपना तथा अपने राष्ट्र का अपमान समझने लगे
जिन स्कूलों में गुलाम होने के अतिरिक्त और अन्य
प्रकारको शिक्षा न दी जाती हो, उसमें स्वाभिमानी
देश-भक्त विद्यार्थी भला कैसे शिक्षा ग्रहण कर सक
थे? सैकड़ों वकीलों ने गरीबों का रक्त चूस कर मो
बनने वाले व्यवसाय को तिलांजलि दे दी। पदवी
धारियों ने गुलामी की स्मारक उपाधियों का त्याग
किया। आनरेरी मजिस्ट्रेटों ने आनरेरी मजिस्ट्रेटी
के पद, तमगे और सम्मान सब वापिस कर दिये।

कुछ सरकारी नौकरों ने तो अपनी नौकरी तक छोड़ दी। यह सब कुछ हुआ, परन्तु अशान्ति का कहीं नाम तक सुनाई न दिया। अशान्ति होती कैसे? लोग भली-भांति समझ गये थे कि जिस प्रकार शरीर बिना आत्मा के जीवित नहीं रह सकता, उसी प्रकार यह असहयोग आन्दोलन भी बिना शान्ति के जीवित नहीं रह सकता। अशान्ति हुई, कि काम बिगाड़ा। इतना जानते हुए भी क्या कोई अशान्ति कर सकता था?

भारतीय नौकरशाही, जिसको सुमार्ग पर लाने के उद्देश्य से यह आन्दोलन प्रारम्भ किया गया था, असहयोगियों की आशातीत सफलता देखकर घबरा उठी। वह स्वेच्छाचारिणी रहना चाहे और लोग उसके विरुद्ध आन्दोलन करें। गजब रे गज़ब! उसने असहयोग आन्दोलन को कुचल डालने का दृढ़ संकल्प कर लिया। अपने निश्चय के अनुसार उसने सैकड़ों ऐसे देश-भक्तों को गिरफ्तार करना प्रारम्भ किया, जो लोगों को कर्त्तव्य मार्ग सुझाते थे। गिरफ्तार होने पर इन देश-भक्तोंने सफाई देने की अपेक्षा जेल जाना ही श्रेयस्कर समझा। जिस

नौकर शाही ने भारत के साथ कभी भी न्यायानुकूल बर्त्ताव नहीं किया, उसकी अदालतों में सफाई देने से भी क्या कभी न्याय हो सकता था ? बहुत से देश-भक्तों से अदालतों ने प्रश्न किया कि तुम लोग अपनी सफाई क्यों नहीं देते ? उन लोगो ने उत्तर दिया कि "हम इस अन्यायी सरकार से न्याय की जरा भी आशा नहीं रखते। हमने जो कुछ किया है वह पवित्र उद्देश और आत्मा के निर्देश से किया है। हम अपने को धर्म और ईश्वर के प्रति अपराधी नहीं समझते। देश को स्वतन्त्रता प्राप्त करने का मार्ग बतलाना यदि अपराध समझा जाता है तो हम अवश्य अपराधी हैं इस अपराध के लिये हम कड़ा से कड़ा दण्ड भोगने के लिये तैयार हैं। कांग्रेस की आज्ञा भङ्ग करने के पूर्व हम अपना अस्तित्व ही नष्ट हो जाना श्रेयस्कर समझते हैं। हमारी कांग्रेस की आज्ञा है कि सरकारी अदालतों में किसी प्रकार की सफाई मत दो और जेल जाने के लिये ख़ुशी से तैयार रहो। जेल के कठिन कष्टों द्वारा ही हम को शीघ्र स्वराज्य मिलेगा। हम अपनी कांग्रेस की आज्ञा शिरो-

धार्य कर सफाइ देना नहीं चाहते। हम लोग शान्ति पूर्वक जेल जाने के लिये तैयार हैं। आप फैसला कीजिये।" धन्य हैं ऐसे देश भक्त जिनके ऐसे महान और पवित्र उद्गार है। धन्य हैं वे मातायें जिनकी कोखों से ऐसे देशभक्त पुत्र पैदा हुए हैं।

इधर भारतीय नौकरशाही दमननीति द्वारा इस आन्दोलन को कुचल डालने का प्रयत्न करती रही और उधर महात्मा गांधी इसको सफल बनाने के लिये जीजानसे परिश्रम करते रहे। थोड़ेसे समय में ही आशातीत सफलता प्राप्त करने पर महात्मा जी को विश्वास हो गया कि भारतवर्ष स्वराज्य प्राप्त करनेके लिये बड़े से बड़े स्वार्थ को तिलाञ्जलि देने के लिये तैयार है। भारतवर्षका सुख-साम्राज्य यहां के व्यवसाय के नष्ट किये जाने के कारण ही लुप्त हुआ था। इसलिये जब तक भारतीय वस्त्र-व्यवसाय की उन्नति के लिये उत्तेजना न दीजायगी, तब तक खोखले स्वराज्य के प्राप्त करने से कोई वास्तविक लाभ नहीं। इस बात को भली भांति समझ कर महात्मा गांधी ने भारतीय वस्त्र-व्यवसाय के पुनरुत्थान करने का सब से सरल और सर्वोत्तम उपाय ढूंढ निकाला।

सन् १६२१ के मार्च के महीने में, अखिल भारतवर्षीय कांग्रेसकमेटी का अधिवेशन बेजवाड़ा में हुआ। महात्मा गांधी द्वारा प्रस्तावित, इस आशय का प्रस्ताव इस कमेटी द्वारा पास हुआ, कि ३० जून सन् १६२१ तक भारतवर्ष से एक करोड़ कांग्रेस के उद्देश को मानने वाले मेम्बर हो जाना चाहिये और देश भर में २० लाख चर्खे काम में आ जाना चाहिये। सब से बड़ी महत्व की बात जो इस प्रस्ताव में है वह बीस लाख चरखों की है। इन्हीं चरखों द्वारा महात्मा गांधी ने भारतीय व्यवसाय के पुनरुत्थान का उपाय ढूंढ निकाला। वास्तव में इससे बढ़ कर भारत की भलाई और किसी चीज से नहीं हो सकती। जिस चरखे के अभाव से भारत की स्वतन्त्रता नष्ट हुई थी, उसी चरखे की सहायता से भारतवर्ष फिर स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा और अवश्य करेगा। आगे चलकर यह बतलाया जावेगा कि भारतवर्ष में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ण करने के लिये कितने चरखों के चलने की आवश्यकता है।

बेजवाड़ा कांग्रेस-कमेटी के नियमानुसार ३० जून के पूर्व ही भारतवर्ष से एक करोड़ से भी अधिक

रुपये वसूल हो गये, एक करोड़ कांग्रेस के मेम्बर हो गये और देश भर में बीस लाख से अधिक चरखे चलने लगे। अभी तक कभो भी किसी संस्था या मनुष्य ने राष्ट्रोत्थान के लिये इतने अधिक रुपये एकत्रित करके नहीं दिखलाया था। अथक परिश्रम करनेवाला महात्मा गांधी के अतिरिक्त और कोई भी मनुष्य इतना रुपया एकत्रित नहीं कर सकता था। एक करोड़ तो क्या यदि महात्मा गांधी चाहते तो यह गरीब देश स्वतन्त्र होने के लिये कई करोड़ रुपये दे सकता था।

इस शान्तिपूर्ण असहयोग युद्ध में महात्मा गांधी को जितनी अधिक सफलता मिलती जाती थी। भारतीय नौकरशाही के उतने ही अधिक होश ध्यावड़े होते जाते थे। भारतवर्ष की स्वतन्त्रता का यह शान्तिपूर्ण अलौकिक युद्ध यहां के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। एक ओर भारतीय नौकरशाही है और दूसरी ओर भारतीय जनता। नौकरशाही के योद्धा शसस्त्र, राजमदमत्त और बड़े बलिष्ट हैं और बेचारी भारतीय जनता निशस्त्र निर्बल और परतन्त्रता के भारी बोझ

से दबी हुई निस्सहाय है। नौकरशाही के पास गोला, बारूद, बम, वायुयान, अहंकार और दमन-नीति के बड़े बड़े प्रबल अस्त्रशस्त्र हैं और इधर भारतीय जनता के पास कष्ट सहिष्णुता, देशप्रेम, असीम साहस, विशाल शुद्ध हृदय, अलौकिक स्वार्थ-त्याग और शान्ति रूपी अनेक अस्त्रशस्त्र हैं। हां भारतीय जनता के पास एक अमोघ ब्रह्मास्त्र और भी है, जिसका नाम है सुदर्शन चक्र अथवा चरखा।

नौकरशाही के दमननीति के शस्त्रास्त्र अनेक स्थानों से छूटकर भारतीयों के हृदयों में प्रवेशकर अनेक बड़े बड़े वीरों को घायल कर रहे हैं। पर इस शक्ति की क्षति से भारतवासी अपने दृढ़ संकल्प से जरा भी विचलित नहीं हुए हैं। वे द्विगुणित साहस और अदम्य उत्साह से रणांगण में डटे हुए हैं। उनका प्रधान सेनापति महात्मा गांधीने उनको आज्ञा दी है कि कष्ट सहो और देशपर बलि होना सीखो। तुम्हारे ऊपर कैसा भी असहनीय वार क्यों न हो परन्तु तुम उफ् तक मत करो। तुमको अपने विपक्षियों की जान लेना तो दूर रहा उनके विरुद्ध जबान से अपशब्द तक न निकालना चाहिये।

तुम्हारा युद्ध शान्तरूप से और नियमानुसार होना चाहिये। उसमें एक बूँद भी खून न गिरना चाहिये। जरा भी अशान्त हुए और तुम्हारा पलड़ा उलटा। तुम्हारा युद्ध शान्तप्रिय असहोग युद्ध है। इस युद्ध की विजय खूंखार शस्त्रास्त्र, घृणा द्वेष, क्रोध, अहंकार और बदला लेने की प्रवृत्ति से न होगी। इसकी विजय पवित्र प्रेम और कष्टसहिष्णुता से ही होगी। हमारी प्रबल आत्मिक शक्ति के सामने नौकरशाही की पाशविक शक्ति को अवश्य ही सर झुकाना होगा। संसार में कहीं भी पशुबल की जीत नहीं हुई है।

दोनों ओर के सेनापति विपक्षियों को हराने के लिये अपने अपने वार कर रहे हैं। महात्मा गांधी बड़े नीतिकुशल और साहसी सेनापति है। उनको अच्छी तरह मालूम हो गया है कि विपक्षियों के दुर्ग का मर्मस्थल उनका एतद्देशीय व्यापार ही है। उस मर्मस्थल पर एक संगठित और शान्ति पूर्ण अस्त्र प्रहार करने से ही हमारी जीत होगी। जो अस्त्र प्रहार किया जावेगा उसमें इतनी प्रबल शक्ति है, जितनी श्रीविष्णु भगवान के सुदर्शन चक्र में थी। वह अमोघ शस्त्र चरखे के सिवाय और कुछ नहीं। इस चरखे का

निशाना सात हज़ार मील पर बसे हुए लंकाशायर और मेनचेस्टर के विशाल कपड़े के कारखानों पर पड़ेगा। इस चरखे के एक ही आघात से समस्त विदेशी कपड़े के कारखाने एकदम नष्ट हो जावेंगे। इतना होने पर भी खून का एक कतरा भी न बहेगा। लड़ाई का यह अनोखा अस्त्र है। अभीतक संसार की सब लड़ाइयां खूनखराबी करके जीती गई हैं परन्तु यह लड़ाई संसार के इतिहास में निराली है। इस लड़ाई का परिणाम बतला देगा कि अपने शत्रु-ओं को प्रेम और कष्टसहिष्णुता से किस प्रकार जीतना चाहिये। पाठक जरा आँख उठा कर देखो इस चरखे के प्रहार से मेनचेस्टर और लङ्काशायर के मालिक कितने घबरा उठे हैं। इनको व्याकुल होकर विलायत में कोलाहल और अशान्ति फैलाने दो। हमारी जीत इसी में होगी। पर इतना ख्याल रखो कि हम लोगों को जरा भी अशान्त न होना चाहिये।

इस शान्तिपूर्ण असहयोग युद्ध में पूर्ण रूप से जय प्राप्त करने के लिये हमको विदेशी कपड़े का पूर्ण रूप से बहिष्कार कर देना चाहिये। इन विदेशी कपड़ों का उपयोग करने से ही हमारा भयंकर नैतिक और

मानसिक पतन, राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रीय सम्पत्ति का ह्रास और जलियानवाला बाग सदृश अत्याचार करने के लिये नौकरशाही का आर्थिक बल-बर्द्धन हुआ है। ये विदेशी कपड़े हमारी गुलामीके चिह्न हैं। जिस प्रकार मनुष्य को मोक्ष प्राप्त करने के लिये इस असार संसार की सर्वब्यापिनी माया से पीछा छुड़ाना पड़ता है, उसी प्रकार हमको स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये विदेशी कपड़ों का पूरा वहिष्कार कर देना चाहिये और उससे शीघ्र ही पिण्ड छुड़ाना चाहिये।

विदेशी कपड़े के वहिष्कार के सम्बन्ध में, ३० जुलाई सन् १९२१ के अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव आप गौर से पढ़िये। उसका एक एक अक्षर बहुमूल्य है। जिस प्रकार आप लोगों ने कांग्रेस की आज्ञाओं का अभी तक पालन किया है, उसी प्रकार इस विदेशी वस्त्रों के वहिष्कार और स्वदेशीके प्रचार वाली आज्ञा का भी पालन कीजिये। इस आज्ञा के पालन पर ही आप के भविष्य की समस्त आशायें निर्भर हैं। प्रस्ताव यह है :—

"स्वराज्य प्राप्त करने और अपनी शिकायतें दूर करने के लिये, कांग्रेस की समस्त संस्थाओं को, आगामी ३० सितम्बर तक, विदेशी कपड़ों का पूर्ण बहिष्कार करनेमें और हाथों से सूत कातने तथा बुननेके व्यवसाय को उत्तेजन देकर खादी तैयार करानेमें अपनी सारी शक्तियां लगा देनी चाहिये। इन उद्देशों की पूर्त्ति के लिये यह कमेटी उन सब लोगों को, जो कांग्रेस के अनुयायी हैं, सलाह देती है कि वे पहली अगस्त से विदेशी कपड़ों को व्यवहार में लाना छोड़ दें। इसके अतिरिक्त कांग्रेस से सम्बन्ध रखनेवाली सब संस्थायें, (१) जहां तक हो सके, सब राष्ट्रीय संस्थाओं से सूत कतवाने और हाथ से कपड़े बुनवाने का काम करावें। (२) जिन घरों में अभी तक चरखे नहीं पहुंच पाये हों, उनमें चरखों का प्रवेश करावें। (३) प्रत्येक जिलेके जुलाहों की मर्दुमशुमारी करें और उनको सुविधायें देकर उन्हें इस कामके लिये तैयार करें, कि वे विदेशी सूत का बहिष्कार कर दें। जहां तक हो सके हाथ का कता हुआ सूत काम में लावें और न हो सके तो मिलों का कता हुआ सूत काम में लावें। परन्तु

विदेशी सूत कदापि काममें न लावें। (४) जिन जुलाहों ने अपना पेशा छोड़ दिया है, उनको विशेष प्रोत्साहन देकर अपना पेशा अपनाने के लिये तैयार करें। (५) रूई धुननेवालों की मर्दुमशुमारी करके, उन्हें कातने के लिये, रूई धुनने को तैयार करें। (६) खादी और कातने बुनने के लिये आवश्यक चर्खे और करघे आदि सामग्री की पूर्तिके लिये डिपो खोलें, जहां से ये सब चीजें मिल सकें और (७) देने-वालों की इच्छानुसार जलाने या स्मर्ना भेजने के लिये विदेशी कपड़े इकट्ठा करें।"

"यह कमेटी बम्बई और अहमदाबाद प्रभृति शहरों के सूतकातने और बुनने के बड़े बड़े कार-खानों के छोटे छोटे एजण्टों और हिस्सेदारों से अनु-रोध करती हैं, कि वे तैयार माल की कीमत अपने मजदूरों के वेतन तथा अन्य खर्चों के लगभग बराबर ही रखें, जिससे उनके तैयार किये हुए कपड़े को गरीब से गरीब लोग भी खरीद सकें और इस प्रकार स्वराज्य प्राप्ति के लिये किये जानेवाले राष्ट्रीय उद्योग की सहायता करें। कमेटीको विश्वास है

कि वे किसी दशा में, कपड़ों की इस समय जितनी कीमत है, उससे अधिक न बढ़ावेंगे।"

"यह कमेटी विदेशी सूत मँगानेवाले व्यापारियों से अनुरोध करती है कि वे तुरन्त विदेशी कपड़े और सूत के लिये मांग भेजना बन्द कर दें और जहां तक हो सके उनके यहां जो विदेशी माल भरा हुआ है, उसे भारत से बाहर बेंचने की कोशिश करें।"

स्वदेशी आन्दोलन भारतवर्ष के लिये बिलकुल नया नहीं है। इस आन्दोलन का बीजारोपण लार्ड कर्जनने सन् १९०५-६में, वंग विच्छेदके समय, किया था। लार्ड कर्जन के इस सुकृत्य के लिये हम उनके बहुत ऋणी हैं और इस देशोपकारी कार्य के लिये उन्हें हार्दिक बधाई देते हैं। सन् १९०५-०६ का स्वदेशी आन्दोलन, विशेष कर इस कारण से सफलीभूत न होने पाया कि एक तो वह एक ही प्रान्त (बङ्गाल) का आन्दोलन था, दूसरे उस समय हिन्दू-मुसलिम ऐक्यता का सूत्र आज सदृश मजबूत न था और तीसरे वह आन्दोलन क्रोध, द्वेष और बदला लेने की विशेष प्रवृत्ति से किया गया था।

इस वीजारोपण के पश्चात्, सन् १९१९ में लार्ड चेम्सफोर्ड ने जलियानवाला बाग में इसे हिन्दू और मुसलमानों के सम्मिलित रक्त से खिंचवाया। इसके पश्चात लार्ड रीडिङ्ग ने दमननीति की सहायता से इसे शीघ्र ही उगने का सुअवसर प्रदान किया। उनके विशेष अनुग्रह से ही इस समय स्वदेशी आन्दोलन रूपी वृक्ष पल्लवित हो लहलहा उठा है। इस समय का आन्दोलन एक प्रान्तीय नहीं और न इस समय हिन्दू मुसलमानों में मतानैक्य ही है। भारत की समस्त प्रधान जातियां इस आन्दोलन को सफल बनाने के लिये जोजान से प्रयत्न कर रही हैं। इस समय का आन्दोलन क्रोध, द्वेष या बदला लेने की प्रवृत्ति से भी नहीं किया जा रहा है। आत्मशुद्धि के लिये, स्वावलम्बन के लिये और संसारकी भलाई करने के लिये ही यह आन्दोलन शान्त रूप से किया जा रहा है। इसलिये बङ्गाल के आन्दोलन के सदृश इसके विफल होने की तिल मात्र भी सम्भावना नहीं है।

लार्ड रीडिङ्ग की सरकार इस समय नव पल्ल-

वित स्वदेशी वृक्ष की रक्षा के लिये सचेष्ट प्रयत्न कर रही है। ईश्वर करे इसके प्रयत्नों से यह वृक्ष और भी हराभरा हो और अच्छे अच्छे फलोंसे शीघ्रही लद जाय। जिस समय इसके मनोहर सुस्वादु फल भारतवासियों की नजरों के सामने आवेंगे उसी समय मानों उनका स्वराज्य उनको दिखाई देगा। आर्थिक स्वतंत्रता ही सुलभ "स्वराज्य सोपान" है। परन्तु ये हृदय को उल्लसित करने वाले और नेत्रों को खुशी से नचाने वाले फल सहज ही में न फलेंगे। इसके लिये भारतवासियों को कठिन स्वार्थत्याग की कड़ी आंच में तपना होगा, दृढ़ प्रतिज्ञा बन घोर विपत्तियोंका सामना करना होगा, विषम यातनाओं के बड़े से बड़े बिकट वार झेलना होगा और साथ ही साथ कर्मपथ से विचलित करनेवाले मोह और माया के जाल को छिन्नभिन्न कर देना होगा।

विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार क्यों करना चाहिये? महात्मा गांधी ने इसके लिये दस कारण बतलाये हैं। पाठकों को उन्हें अच्छी तरह से मनन कर, शीघ्र ही कार्यक्षेत्र में अवतरित हो जाना चाहिये।

सोच विचार में अधिक समय नष्ट कर देने से हमारी बड़ी हानि होगी। कारण ये हैं :—

(१) ब्रिटिश राज्य स्थापित होने के पूर्व हम अपने लिये सब कपड़ा तैयार करते थे और बहुत सा विदेशों को भी भेजते थे।

(२) चरखे के लुप्त होने से (जिसके लिये ज़बरदस्ती की गई) प्रतिशत ८० मनुष्यों की आमदनी और जीविका मारी गई।

(३) विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार से और हाथ के बुने हुए कपड़ों के पहिनने से हमारी महिलाओं की मानमर्यादा की रक्षा होगी। सूत कातने के सुन्दर व्यवसाय के अभाव से उन्हें घर के बाहर जाकर दूसरा काम करना पड़ता है तथा अपने को भय और विपत्ति में फँसाना पड़ता है। चरखों के चलने पर उन्हें बाहर न जाना पड़ेगा।

(४) निर्जीव यन्त्रों के बुने हुए कपड़ों की अपेक्षा हाथ से बुनी हुई खादी में अधिक कला-कौशल रहता है। हाथ से बुने हुए कपड़ों में एक प्रकार का गुप्त काव्य भी रहता है।

(५) सूत कातने के व्यवसाय का पुनरुत्थान ही

करोड़ों भूखके मारे गूंगे बने हुए भारतवासियों की बढ़ती हुई दरिद्रता को रोकने का उपाय है। उपयुक्त व्यवसाय के अभाव से ही ये लोग भूखे मरते हैं।

(६) विदेशी कपड़े के बहिष्कार से भारत को वार्षिक ६० करोड़ के व्यय बचेगा और इसी कारण किसी दूसरे उद्योग-धन्धे या मज़दूरी को हानि पहुंचने की सम्भावना नहीं।

(७) विदेशी वस्त्र के सदृश, दूसरी किसी अन्य वस्तु ने भारत को अधिक हानि नहीं पहुंचाई है।

(८) सन् १९१९-२० में १५० करोड़ का विदेशी माल भारत में आया, जिसमें केवल कपड़ा साठ करोड़—अर्थात् एक तिहाई से भी अधिक मूल्य का था।

(९) विदेशी वस्त्र की आयात से इङ्गलैण्ड अमानुषिक स्वार्थी बन गया है और उसी कारण से जापान भी व्यवसायी बन रहा है। यदि जापान की यह आयात ऐसी ही रही तो कुछ काल में, भारत इङ्गलैण्ड की ही नहीं वरन् जापान की भी शरण में औंधा गिरा रहेगा।

(१०) भारत जैसे विशाल देश के लिये, जिस प्रकार अनाज के लिये विदेशों का मुंह ताकना आत्म-हत्या की तरह नाशकारक है, उसी प्रकार कपड़े के लिये भी है।"

उपरोक्त कारणों से पाठकों को विश्वास हो गया होगा कि इस समय विदेशी कपड़ों का बहिष्कार और स्वदेशी का प्रचार उचित ही नहीं, वरन् देश के कल्याण के लिये परमावश्यक है। इङ्गलैंडने अपनी रक्षा करने के उद्देश से, एक समय जिस प्रकार, भारत के कपड़ों का बहिष्कार किया था, उसी प्रकार आज भारत को भी अपनी रक्षा के उद्देश से इङ्गलैण्ड तथा अन्य देशों के कपड़ों का, उस समय तक के लिये, बहिष्कार करना होगा जबतक हम स्वराज्य प्राप्त नहीं कर लेते। स्वतन्त्रता के विशाल और पवित्र मन्दिर में प्रवेश करने के पूर्व हमको सब बातों में स्वावलम्बी होना सीख लेना चाहिये। अपने शरीर को विदेशी कपड़ों से ढँके हुए यदि हम स्वतन्त्रता देवी के पवित्र मन्दिर में प्रवेश करना चाहेंगे तो बाहर ढकेल दिये जावेंगे। यदि हम सचमुच ही स्वतन्त्रता देवी के उपासक हैं तो

हमको मनसा-वाचा-कर्मणा महात्मा गांधी तथा कांग्रेस की आज्ञा का पालन करना चाहिये।

विदेशी कपड़ों के बहिष्कार का यह तात्पर्य नहीं, कि हम दुनियां को बतलाने के लिये बाहर तो खादी और स्वदेशी कपड़ों का उपयोग करें और अपने घर के अन्दर ट्रंकों में बन्द कर विदेशी कपड़े छिपाकर रखें। जिस चीज का बहिष्कार किया जाय वह पूर्णरूप से किया जाय। चञ्चल चित्त से किसी भी कार्य के करने का ठीक परिणाम नहीं होता। जब हम को एक बार विश्वास हो गया कि विदेशी कपड़ों के पहिनने से हमारा और हमारे राष्ट्र का अपमान होता है, तब हम को राष्ट्रीय अपमान कारक वस्तु को एकदम जला देना चाहिने। उसका एक चिरकुट तक अपने पवित्र घरों में न रखना चाहिये। हमारे नैतिक, मानसिक, शारीरिक और राष्ट्रीय विकास का द्वार उन वस्त्रों के जलते ही खुल जायगा। अग्निदेव इस आहुति को पाकर हम पर अवश्य ही कृपा करेंगे और हमारे हृदयों को देश प्रेम के रंग से ऐसा रंग देंगे कि फिर 'भविष्य में

हम कभी भी सन्मार्ग से हटानेवाली माया के फन्दे में न फंस सकेंगे ।

बहुत से आदमी विदेशी कपड़े का जलाना उचित नहीं समझते। उनका कथन है कि विदेशी कपड़ों को जलाने की अपेक्षा उन गरीबों को दे देना उचित है, जिनके पास न तो पहनने के ही लिये और न बिछाने के लिये कपड़े हैं । ऐसे मनुष्यों को कपड़ा देने से उनका दुःख भी हलका होगा और हमारा रुपया जो कपड़ों के खरीदने में व्यय हो चुका है, जलनेसे बच जायगा। परन्तु ये सब विदेशी कपड़ा न जलाने के सम्बन्ध की दलीले .लचर और निरर्थक जान पड़ती है। क्योंकि जिन वस्त्रों को काले नाग के जहर से भींजा हुआ समझकर हम त्याग देते हैं, उन्हें गरीबों को देने से कोई लाभ नहीं हो सकता। हम को अपनी जान जितनी प्यारी है, गरीबोंको भी उनकी जान उतनी ही प्यारी है। जिस नाग के जहर से बचनेको हम स्वयं कोशिश करते हैं, उसे गरीबोंके शरीर पर क्यों फेंकना चाहिये? क्या इस जहर से गरीबों को हानि के अतिरिक्त कभी लाभ हो सकता है? क्या हमारा यह कर्त्तव्य है कि गरीबों को तकलीफों

बचाने के लिये हम उनके प्राण के ग्राहक बन जांय ? हमारा तो यह निश्चित सिद्धान्त है कि विदेशी वस्त्र का घर में चिह्नतक रखना पाप समझा जाय और उसे निःसंकोच और शीघ्र ही जला डाला जाय। महात्मा गांधी की इस विषय में क्या राय है पाठक, जरा उसको भी पढ़ लीजिये,—

"विदेशी कपड़े जलाने के विरुद्ध मुझे जितने कारण बताये जाते हैं उन सबको सुनकर मेरा निर्णय यही रहता है कि विदेशी कपड़ों का जला डालना ही श्रेयस्कर है। उनका नष्ट करना उचित है या नहीं, इसका उत्तर विदेशी वस्त्र त्यागने की आवश्यकता में, अपने अपने विश्वास की शक्ति पर निर्भर है। जिसने शराब पीना छोड़ दिया है, वह अपनी शराब भरी बोतल अपने पड़ोसी को नहीं देगा। वह उसे फेंक देगा। मैं विदेशी कपड़ों का पहिनना शराब पीने के समानही बुरा समझता हूं। सम्भव है, वह औरभी अधिक बुरा हो। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने हम पर अत्याचार करके हमारा व्यापार नष्ट कर डाला और हमने उसके अन्याय से दबकर जो पाप किया उसको याद करके हमारा सिर नीचा हो जाता है"। यदि

हमारा कपड़े का उद्योग नष्ट न हुआ होता तो हमारी स्त्रियों को आज सड़कों पर मजदूरी करने की नौबत न आती और करोड़ों मनुष्य बेकार न रहते। जो विदेशी वस्त्र ऐसी शोकजनक याद दिलाता है और जो हमारी लज्जा तथा पतन का कारण है, वह नष्ट करने के ही योग्य हैं। वह गरीबों को भी दिया नहीं जा सकता। जो हमारे लिये गुलामी का चिन्ह हैं, वह उन्हें नहीं दिया जाना चाहिये क्योंकि उनके हृदय में राष्ट्रीयता, देशभक्ति और आत्मसम्मान है। हमें उनके भावों का आदर करना चाहिये। हमारे गन्दे, फटे और पुराने कपड़े या रेशमी और महीन वस्त्र उनके किसी काम के नहीं। परन्तु मेरा तर्क तो और भी गहरा है। केवल उसीसे हमारे हृदय की उच्चता का विकास हो सकता है। एक क्षण के लिये अपने विश्वास को छिपा लेने से यदि मुझे करोड़ों का धन मिलता है तो उसे छिपा लेने में क्या हानि है? पर संसार का साम्राज्य मिले तो भी मैं नहीं छिपाता। इसी लिये मैं गरीबों की भावनाओं का ख्याल करके विदेशी कपड़े उन्हें देने के विरुद्ध हूं।*

उपरोक्त बातों के जानने पर, पाठकों को अब पूर्ण रूपसे विश्वास हो गया होगा, कि विदेशी कपड़ों का केवल बहिष्कार ही नहीं बरन जला डालना परमावश्यक है। इन वस्त्रों को जला देने के पश्चात् हम लोगों को हाथ पर हाथ धर कर बैठ न जाना चाहिये। प्रत्येक घर में चरखे चलना चाहिये और इन चरखों के कते हुए सूत से कपड़े बनवा कर पहिनना चाहिये। हाथ के बने हुए दोनों सूत की खादी पहिनना चाहिये। विदेशी कपड़ा मुफ्त में भी क्यों न मिले परन्तु उसका उपयोग कभी भी न करना चाहिये। पवित्र खादी पहिनना ही स्वतन्त्रता के उपासकों का चिह्न है। यहां पाठकों को एक बात से सचेत हो जाना चाहिये। भारतीय बाजारों में खादी की बढ़ती हुई मांग को देख कर जापान तथा मेनचेस्टर के व्यापारियों ने यहां विदेशी खादी भेजना प्रारम्भ कर दिया है। इस खादी को भूल कर भी न खरीदना चाहिये। देश की खादी चाहे कितनी ही मोटी और खरखरी क्यों न हो वही हमारे लिये कमख्वाब और वाफता तुल्य प्यारी और अपनाने योग्य वस्तु है।

भारतीय बजाजों को भी चाहिये कि वे इस समय सिवाय स्वदेशी कपड़ों के विदेशी कपड़ों का बेचना एक दम बन्द कर दें। जहांतक हो सके खादी ही बेचें। विदेशी वस्त्रों के व्यापार को बन्द कर देने से उनको कुछ आर्थिक हानि होने की संभावना अवश्य है, परन्तु देश के एक जबरदस्त फायदे के सामने उन्हें अपनी इस जरा सी हानि का जरा भी ख्याल न करना चाहिये। प्रत्येक भारतवासी को देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये कुछ न कुछ स्वार्थ-त्याग अवश्य करना पड़ेगा। यदि हमारे बजाज भाई विदेशी कपड़ों का बेचना बन्द कर दें, तो हमें को उनके द्वारा राष्ट्रीय उन्नति में बहुत सहायता मिल सकती है।

हमारा विदेशी कपड़े का वहिष्कार उसी समय पूर्णरूपसे सफलीभूत हो सकता है, जब कि हम अपनी आवश्यकता के अनुसार यहीं पूरा कपड़ा बना सकें। ३२ करोड़ भारतवासियों की आवश्यकता पूर्ण करने के लिये, बहुत से लोगों का कथन है, कि बहुत सी बड़ी बड़ी मिलें खोलना पड़ेंगी। चरखों के द्वारा इतना अधिक कपड़ा तैयार नहीं किया जा

सकता। इस बात से हम सहमत नहीं। हम अँग्रेजों की हर एक बात में नकल नहीं करना चाहते। मजदूरों की समस्या इस समय इतनी जटिल हो गई है कि बड़े बड़े दिग्गज दिमाग वाले भी उसको सुलझाने में असमर्थ हो रहे हैं। कुछ थोड़े से पूंजीपतियों को लाभ होने की अपेक्षा, प्रत्येक मनुष्य में लाभ का बट जाना ठीक समझते हैं। मिलों की अपेक्षा चरखों के द्वारा ही सुगमता से हमारी आवश्यकताएं पूर्ण हो सकती हैं। अब हमको यह देखना चाहिये कि कितने चरखों के चलने से हम अपने देश की कपड़े की मांग पूरी कर सकते हैं। इस जटिल प्रश्न को श्रीयुत वी० जे० पटेल और जे० के० मेहता महोदयों ने जिस प्रकार हल किया है, वह हम अपने पाठकों को बतलाते हैं। नीचे लिखे हुए अङ्कों म बिलायती कपड़े के जो अङ्क दिये हुए हैं, वे विलायत से यहां आकर यहांसे बाहर गये हुए कपड़े की तादाद को घटा कर दिये हैं।

यूरोपीय महायुद्ध के पूर्व, अर्थात् सन् १९१४ में, इस देश में कपड़े का जितना स्टाक आया, वह इस प्रकार है :—

(अंक करोड़ गज के हैं)

	बिनधुला	धुला	रंगीन	कटपीस	फुटकर
विदेशसे	१५२.६३	७८.४६	७८.३१	३.७८	३१३.४८
देशमें बना	८२.८७	......	२४.६८	......	१०७.५५

योग—२३५.८०, ७८.४६, १०२.९९, ३.७८, ४२१.५५

उक्त वर्षमें प्रति मनुष्य १३.६ गज (अर्थात् १३॥ गजसे कुछ अधिक, कपड़ा हमारे देशमें पड़ता था।

जब सन् १९१४ के अगस्त मासमें लड़ाई शुरू हो गई, तब व्यापार-वाणिज्यमें शिथिलता आ गई और विलायत के कारखानों को महायुद्ध के विशेष कार्यों की वजह से कपड़ा बनाने की फुरसत न मिली और न विलायती माल भेजने के लिये जहाज ही उस समय मिल सकते थे। यद्यपि जापान लड़ाईके जमानेमें—अर्थात् १९१५ से १९१९ तक—

हिन्दुस्थानमें अधिकाधिक कपड़ा भेजता रहा, तथापि उक्त पांच सालोंका औसत, सन् १९१४ के बराबर न आई। यह बात नीचे लिखे अंकोसे सिद्ध होती है :—

(अंक करोड़ गज के हैं)

	बिनधुला	धुला	रंगीन	कटपीस	कुलजोड़
विदेशसे आया	८८.२८	५०.०४१	३४.८३	३.०६	१७६.६२

देशमें बना..१२९.००

योग..३०५.६२

इस अवसरमें प्रति मनुष्य ९,२८ (अर्थात् ९।।। गज से कुछ अधिक) गज कपड़ा हमारे देशमें पड़ता था।

लड़ाई के बन्द होनेपर भी स्टाककी वृद्धि न हुई। ३१ मार्च १९२१ तक खतम होने वाले वर्ष में इस प्रकार स्टाक था :—

(अंक करोड़ गज के हैं)

	बिनधुला	धुला	रंगीन	कटपीस	फुटकर
विदेश आया	५४.५६	४२.४४	४७.०३	१०.८०	१४५.८३
देशमें बना	११२.६६		४५.१०		५८.०६

योग—१६७.५४, ४२.४४, ६२.३१, १.८०, २०३.६२

इस वर्ष प्रति मनुष्य ६॥ गज कपड़ा पड़ा। ऊपर दिये हुए अंकोंका विचार करनेसे यह बात साफ जाहिर होती है कि लड़ाई के समय पांच वर्ष तक प्रति मनुष्य लगभग ६॥। कपड़ा मिलने पर भी देशवासी कपड़े के मोहताज न रहे। लड़ाई के पूर्व प्रति मनुष्य १३॥ गज के लगभग कपड़ा पड़ता था, किन्तु लड़ाईके समयमें हम लोग अपनी आव-कता—चाहे मजबूर होकर ही क्यों न हो—घटा सके थे। इस समय भी यदि हम लोग विदेशोंसे एक गज भी कपड़ा न मंगवावें और अपने ही देशकी मिलों तथा चरखों से बने हुए सूत और कपड़ेका उपयोग

करें तो कपड़ेकी कमी जरा भी नहीं रह सकती। इस बातके प्रमाण के लिये नीचे लिखे हुए अंकों पर ध्यान देना होगा :—

मार्च १९२१ में समाप्त होने वाले वर्ष में हमारे देशमें नीचे लिखे अनुसार सूत तैयार हुआ। (इन अंको में चर्खों से बने हुए सूत तथा कपड़े का हिसाब सम्मिलित नहीं है।)

देश में तैयार हुआ।

सूतका नम्बर	रतल
नम्बर १ से १० तक	८,३६,४३,०७४
,, ११—२० ,,	३५,६५,२७,३२६
,, २१—३० ,,	१६,१०,८५,७४८
,, ३१—४० ,,	१,५०,२४,३८६
,, ४०—से ऊपर	२०,६७,१६८
वेस्ट काटन से बना हुआ	३,५४,८९२
कुल	६६०००२५१७
इसमें से जो विदेश गया	८२५३५२२०
शेष	५७,७४,६७,३७७
विदेशसे आया	४७०,०११४३

ऊपर बतला चुके हैं कि सन् १९२१ में हिन्दुस्थान में १५८.०९ करोड़ गज कपड़ा तैयार हुआ। इसमें से १४.६४ करोड़ गज कपड़ा बाहर के देशों को गया अर्थात् शेष १४३.४५ गज देश में रहा। इसी वर्ष विलायती कपड़ा (जिसमें से यहां से बाहर गया हुआ कपड़ा घटा दिया गया है) देश में १४५.८३ करोड़ आया था। अर्थात् कुल कपड़ा जो उक्त वर्ष में हमारे यहां खर्च हुआ वह २८९.२८ करोड़ गज था।

मिल के एक रतल सूत से चार गज कपड़ा तैयार होता है। उक्त वर्ष में हमारे देश में बाहर से ४७००११४३ रतल सूत आया। (विलायत से यहां आकर फिर विदेशों में गया हुआ सूत घटा कर यह अंक दिया गया है।) इस सूत से प्रति रतल चार गज के हिसाब से १८८००४५७२ गज कपड़ा तैयार हुआ अर्थात् लगभग ३०८.०८ करोड़ गज कपड़ा हमारे देश के काम में आया। देशी मिलों का जो सूत हमारे यहां तैयार होता है, उसमें से लगभग बहत्तर करोड़, नब्बे लाख, उन्नीस हजार और सात सौ

बासठ गज कपड़ा करघों से तैयार हुआ और शेष सूत दूसरे कामों में लगा।

यदि हम लोग बाहर से विलायती सूत और कपड़ा न मंगवायें और यहां की मिलों का माल बाहर न जाने दें तो नीचे लिखे अनुसार कपड़ा तैयार किया जा सकता है :—

करघों पर	७२९०१९७६२	गज
मिलों में यहीं के सूत से	१४३२४८४९५३	,,
विदेश में जानेवाले सूत से	३३०१४०८९०	,,
बाहर जाने वाला माल रोककर	१४६३६४७९३	,,
कुल	२६३९०१०३८८	,,

जैसा कि ऊपर कह आये हैं। हमारे यहां गत वर्ष लगभग ३०८.०८ करोड़ गज कपड़ा खर्च हुआ। इसमें ऊपर के हिसाब के अनुसार हम २६३.९० करोड़ गज कपड़ा आज बना सकते हैं। शेष ४४.१८ करोड़ गज कपड़े की हमें जरूरत पड़ सकती है। यह काम चरखों से अच्छी तरह हो सकता है। मान लीजिये चरखे के एक रतल सूत से ३ गज कपड़ा बन सकता है, तब ४४.१८ करोड़ गज के

लिये हमें ज्यादा से ज्यादा १४.७२ करोड़ रतल सूत की आवश्यकता है।

८ घण्टे काम कर के प्रतिदिन एक आदमी पौन रतल सूत कात सकता है। इस हिसाब से प्रति-मास साढ़े बाइस रतल और वर्ष भर में २७० रतल सूत एक चरखे पर तैयार हो सकता है। इस हिसाब से १४.७२ करोड़ रतल की आवश्यकता पूरी करने के लिये हमें ५७४४११ चरखे और चलाना पड़ेंगे। इस हिसाब में चरखों के बिगड़ने और काम करने वालों की बीमारी आदि का हिसाब लगा लेने पर १० लाख चरखों से हमारा काम खूब अच्छी तरह चल सकता है। यदि महात्मा गांधी जी के आज्ञानुसार बीस लाख चरखे चलाये जांय तो देश म किसी तरह भी कपड़े की कमी न रह सकेगी।"

इसी विषय में जबलपुर के बाबू गोविन्ददास जी ने एक विस्तृत लेख लिखा है, जो प्रत्येक भारतवासी के मनन करने योग्य है। हम उस लेख को अपने पाठकों के ज्ञानार्थ यहां ज्यों का त्यों उद्धृत कर देते हैं :—

"तारीख २८, २९ और ३० जुलाई को बम्बई में, अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी का जो अधिवेशन हुआ। उसे यदि अबतक के समस्त अधिवेशनों से अधिक महत्व का माना जाय तो अनुचित न होगा। क्योंकि एक तो इसके सदस्य कांग्रेस द्वारा निर्धारित पद्धति से चुने हुए, जनता के सच्चे प्रतिनिधि थे, दूसरे प्रायः सभी सदस्त अधिवेशन में उपस्थित हुए थे और तीसरे जिन विषयों पर अधिवेशन में विचार हुआ था, वे देश को स्वतन्त्र बनाने में अत्यन्त महत्व के थे।

जो प्रस्ताव इस अधिवेशन में पास हुए हैं, उनमें सबसे अधिक महत्व का प्रस्ताव विदेशी कपड़े का बहिष्कार और स्वदेशी के प्रचार के सम्बन्ध में है। बेजवाड़ा की कांग्रेस कमेटी की आज्ञा पालन जिस प्रकार हुई है। उससे स्पष्ट जान पड़ता है कि इस कमेटी की आज्ञा के पालने में भी देश कदापि पीछे न रहेगा।

अर्थ शास्त्र का यह विश्वनीय नियम है कि जिस देशमें कच्चे माल की निकासी और तैयार माल की आमदनी अधिक होती है। उस देश की सदा अव-

नति रहती है। हमारे भारतवर्ष की इस समय ठीक यही दशा है। इसीलिये विदेशी कपड़े के बहिष्कार और स्वदेशी के प्रचार का आन्दोलन उठाया गया है। अतः हमें यहां देखना है कि हमारा यह उद्देश्य किस प्रकार सफल हो सकता है।

रुई

भारतवर्ष में लगभग २२५०००० एकड़ जमीन में कपास बोया जाता है। सन् १९१३—१४ में; अर्थात् लड़ाई के पूर्व और गत दो वर्षों—अर्थात् सन् १९१८-१९ और १९१९-२० में—जितनी रुई भारतवर्ष में हुई, विदेशों से यहां आई और यहां से विदेश गई, जितनी यहांके मिलों में खपी और जितनी यहां उठी उसका, हिसाब नीचे दिया जाता है:—

[पृष्ठ नं० १२० में देखिये]

नकशा नम्बर १ रुई का गांठों में (एक गांठ=४०० रतल)

सन्	रकबा जिसमें कपास बोया एकड़ में	कूती हुई फसल	विदेश गई	मिलों में खर्पी	फूटकर उठी	अन्दाजी हुई फसल — कम + अधिक
१९१३-१४	२५०२०००० ,	५०६५००० ,	३९४०००० ,	१८१६००० ,	४५०००० ,	— ८४८०००
१९१८-१९	२१०३८००० ,	३२७८००० ,	१२५३००० ,	२००३००० ,	७५०००० ,	— २८०००
१९१९-२०	२३०६३००० ,	५८४५००० ,	२३९८००० ,	२००६००० ,	७५००९० ,	+ ६९१०००

*नोट:—सन् १९१९-२० के ५६७ खानों के हिसाब पक्के प्राप्त नहीं हैं। अनुमान करके अंक भरे गये हैं।

(२) विदेशों से यहां कितनी रुई आती है, इसका ठीक हिसाब प्राप्त नहीं है। परन्तु दरियाफ्त करने पर मालूम हुआ है कि प्रतिवर्ष डेड़ लाख से दो लाख गांठों के लगभग यहां पर विदेशों से आती है।

सूत

इस हिसाब से जान पड़ता है कि जो रुई भारतवर्ष में खपती है। वह अधिकांश मिलों में सूत बनाने में व्यय होती है। हाथ से कितना सूत काता जाता है, इसका हिसाब प्राप्त नहीं है। परन्तु गत २० वर्षों से जिस प्रकार चरखे का प्रचार घटा है उससे मालूम होता है कि इस समय यदि हाथ से सूत कता भी है तो वह नहीं के बराबर हैं।

सन् १९१३-१४ और १९१८-१९ तथा १९१९-२० में भारतवर्ष के मिलों और उनके स्पिण्डलों तथा लूमों की संख्या नीचे दी जाती है:—

नक्सा नम्बर २ मिलों का।

सन्	मिल	स्पिण्डल	लूम
१९१३-१४	२७२	६५९६६८६२	९४१३६
१९१८-१९	२६२	६६५३८७१	११६४८५
१९१९-२०	२५८	६६८९६८०	११८२२१

सन् १९१३-१४ और १९१८-१९ तथा १९१९-२० में जितना सूत यहां के मिलों में तैयार हुआ, विदेशों से यहां आया, यहां से विदेश गया, यहां की मिलों

म खपा और उसके उपरान्त जितना यहां शेष बचा, उसका हिसाब :—

नक्शा नम्बर ३ सूत का (रतल में)

सन्	यहांके मिलों में तैयार हुआ	विदेश से आया	यहांका बना विदेश गया	विदेशी	यहांके मिलों में खपा	शेष
१९१३-१४	६८३००००००,	४४००००००,	१८८००००००,	३३१००००००,	२४५००००००,	२८३००००००
१९१८-१९	६१५००००००,	३८००००००,	६४००००००,	३१२००००००,	३१२१०००००,	२७४८०००००
१९१९-२०	६३६००००००,	१५००००००,	१५२००००००,	५३३००००००,	३४३६०००००,	१५३४०००००

नोटः—सन् १९१९-२० में खाना ६ और ७ के अंकों का ठीक हिसाब प्राप्त न हो सकने के कारण ये अंक अन्दाज लगा कर रखे गये हैं।

कपड़ा।

भारतवर्ष की मिलों की तथा उनके स्पिण्डलों और नमूनों की संख्या नकशा नम्बर २ में बताई जा चुकी है। सन् १९१३-१४ और १९१८-१९ तथा १९१९-२० में जितना कपड़ा इन मिलों में बना, विदेशों से यहां आया यहां, से विदेश गया और यहां पर शेष रहा, उसका हिसाब नीचे लिखे अनुसार हैः—

नक्शा नम्बर ४ कपड़े का (गजों में)

सन्	यहांके मिलोंमें तैयार हुआ	विदेशसे आया	यहांका बना विदेश गया	विदेशी	शेष
१९१३-१४	११६४३००००० ,	३१[illegible]१००००० ,	८९२००००० ,	६२१००००० ,	४२१०००००००
१९१८-१९	१४५०[illegible]००००० ,	११२२०००००० ,	१४९१००००० ,	११४२०००० ,	२३०९४०००००
१९१९-२०	१६३९[illegible]००००० ,	१०८०[illegible]००००	१९६६००००० ,	८८६००००० ,	२४३५२०००००

इस के अतिरिक्त हाथ से, करघों द्वारा भी भारतवर्ष में कपड़ा बनता है। यद्यपि उसका ठीक हिसाब प्राप्त नहीं है। तथापि निम्नलिखित प्रकार से इसका अनुमान किया जा सकता है:—

नक्शा नम्बर ३ में दिखाया गया है कि मिलों में खपने के उपरान्त भी यहां पर सूत बचता है। उपरोक्त तीनों सालों का औसत निकालने से प्रति-वर्ष यहां २३७२०००० रतल सूत की बचत रहती है। नक्शा नम्बर २ में, मिलों में जितने सूत की खपत बतलाई गई है और नक्शा नम्बर ४ में मिलों से जितने कपड़ों की तैयारी बतलाई गई है। उससे जान पड़ता है कि एक रतल सूत में लगभग ४ गज कपड़ा बनता है। इस २३७१८०००० रतल सूतमें से, यदि हम यह मान लें कि ७१००००० रतल सूत अन्य कार्यों में खर्च होता होगा, तो भी २३०० ००००० रतल सूत बचा। जिसमें रतल पीछे ४ गज कपड़े के हिसाब से ९२००००००० गज कपड़ा करघों द्वारा तैयार होता होगा परन्तु मिलों में मोटे और पतले दोनों प्रकार के सूत की खपत होती है। करघों में इस समय विशेष

कर मोटा सूत ही काम में लाया जाता है। यदि हम यह स्वीकार कर लें कि मोटे सूत का कपड़ा कुछ कम बनता होगा, तो ९२००००००० के स्थान में ९००००००००० गज कपड़ा करघोंसे बनना मान लेना अनुचित न होगा। इस प्रकार उपर्युक्त तीनों वर्षों में भारतवर्ष में बने हुए कपड़े में ९०००००००० गज कपडा और जोड़ देने से यहां पर नीचे लिखे अनुसार कपड़ा शेष रहता है :—

नक्शा नम्बर ५ यहांपर शेष बचे हुए कपड़ेका हिसाब गजोंमें।

सन्	मिलोंका	करघोंका	योग
१९१३-१४	४२१०१०००००	९०००००००००	५११०१०००००
१९१८-१९	२३०६४०००००	९०००००००००	३२०६४०००००
१९१९-२०	२४३५२०००००	९०००००००००	३३३५२०००००

कपड़ा जो प्रति मनुष्य पड़ता है ।

सन् १६१६ में भारतवर्ष की जनसंख्या लगभग ३१५०००००० के थी। नक्शा नम्बर ५में बतलाया गया है कि सन् १६१३-१४ में ५११०१००००० गज कपड़ा भारतवर्ष में रहा। इस हिसाब से प्रति मनुष्य १६ गज कपड़े का पड़ता था, किन्तु सन् १६१८-१६ और १६१६-२० में जितना कपड़ा शेष रहा उसका औसत लगाने से जान पड़ता है कि इन दो वर्षों में यहां ३२७९३००००० गज ही कपड़ा बचा। सन् १६२१ की मनुष्य गणना में यहां लगभग ४०००००० मनुष्यों की वृद्धि हो गई। अतः इन दो वर्षों में आदमी पीछे १० गज ही कपड़ा पड़ा है। यह कमी कपड़े की मँहगी के कारण ही हुई मालूम होती है। महात्मा गांधी का कथन है, कि जहांतक हो सके हमें कम कपड़ा काम में लाना चाहिये। इस समय जितना कपड़ा आदमी पीछे पड़ता है, उतने ही की आवश्यकता मान लेने पर हमारे देश को ३२७९३००००० गज कपड़ा चाहिये। इसकी पूर्ति उपर्युक्त दोनो वर्षों में जिस प्रकार हुई है, उसका हिसाब नक्शा नम्बर ४ और ५ में दिया

गया है, जिससे स्पष्ट है, कि इन दोनों वर्षों में औसत से २२७२४ ००००० गज़ कपड़ा तो यहीं के मिलों तथा करघों का शेष रहा और ९९९९५०००० गज़ कपड़ा विदेश का आया हुआ यहां पड़ा रहा। अब हमें यह देखना है, कि यदि हम विदेशी कपड़े का बहिष्कार करें तो इस ९९९९५०००० गज़ कपड़े की पूर्ति किस प्रकार हो सकती है।

कपड़े की पूर्ति का उपाय।

नक्शा नम्बर ४ में बतलाया गया है, कि हम अपने यहां का बना हुआ कपड़ा विदेश भेजते हैं। सन् १९१८-१९ और १९१९-२० में औसत से १७२८५०००० गज़ कपड़ा हमने विदेशों में भेजा है। यदि हम इसे विदेश न भेजें तो ९९९९५०००० गज़ कपड़े मेंसे यह १७२८५०००० गज़ कपड़ा घटा देनेपर फिर हमें ८२७१००००० गज़ ही कपड़े की कमी रहेगी।

हम अपने देश का बना हुआ सूत भी विदेश भेजते हैं, जैसा कि नक्शा नम्बर ३ में बतलाया

गया है। सन् १९१८-१९ और १९१९-२० में जो सूत हमने विदेश भेजा है, उसका औसत निकालने पर जान पड़ता है, कि १०८०००००० रतल सूत विदेश भेजा गया। इन्हीं दो वर्षों में औसत से २६५०००००० रतल सूत विदेश से हमारे यहां आया है। तब भी हमारे यहां का ८१५०००००० रतल सूत विदेश को अधिक गया। यदि हम विदेश से सूत मंगाना और भेजना बन्द कर दें तो हमारे यहां यह ८१५०००००० रतल सूत बचता है। एक रतल में ४ गज़ कपड़े के हिसाब से इस सूत से ३२६००००००० गज़ कपड़ा बन सकता है। यदि प्रयत्न किया जाय तो हमारे यहां की मिलों में भी इतना कपड़ा अधिक बन सकेगा। इस प्रकार उपर्युक्त ८२७१००००० गज़ कपड़े की कमी से यह ३२६००००००० गज़ कपड़ा घटा देनेपर फिर हमें केवल ५०११००००० गज़ कपड़े की कमी रह जाती है। एक रतल में ४ गज़ कपड़े के उपर्युक्त हिसाब से ५०११००००० गज़ कपड़े के लिये हमें १२५२०००००० रतल सूतकी आवश्यकता होगी।

रुई की कमी नहीं है।

इस सूत के लिये हमें रुई की कमी नहीं है। नक्शा नम्बर १ में बतलाया जा चुका है, कि भारतवर्षसे कितनी अधिक रुई विदेश जाती है। इस सूत के लिये आवश्यक रुई हमें विदेश जाने से रोक लेना चाहिये। अब प्रश्न यह रह जाता है, कि यह सूत और कपड़ा यहां किस प्रकार तैयार किया जा सकता है।

इसकी पूर्तिका सबसे अच्छा उपाय चरखों और करघोंका चलवाना है, क्योंकि यदि हम इसके लिये मिलोंकी स्थापना करना चाहें तो इसमें एक तो बड़ी भारी पूंजी की और दूसरे बहुत समय की आवश्यकता है। तीसरे विदेशी कपड़े के बहिष्कार के साथ ही इस आन्दोलन का, जो हमारा उद्देश घर घर व्यवसाय फैलाने का है, वह मिलों से सफल नहीं हो सकता। अब देखना यह है, कि इन रहटों और करघों की व्यवस्था किस प्रकार हो सकती है।

चरखा ।

चरखों की व्यवस्था का सब से सरल उपाय महात्मा गांधीजी के कथनानुसार घर घर चरखों का चलवाना है। फुरसत के अनुसार प्रति दिन यदि दो घण्टे भी सूत काता जावे तो प्रत्येक मनुष्य एक छटांक अर्थात् ५ तोले सूत सुविधा पूर्व्वक कात सकता है। इस हिसाबसे एक मास में १५० तोले अर्थात् ३४ रतल सूत हुआ जिसका एक वर्ष में ४०८ रतल होता है। यदि हम यह भी मान लें, कि पूरे वष भर प्रति दिन नियम पूर्व्वक सूत नहीं काता जा सकेगा, तो भी एक वर्ष में ८ महीने तो अवश्य काता जा सकता हैं। इस हिसाब से एक वर्ष में एक रहट से २७२ रतल सूत तो अवश्यही कत सकता है। ऊपर बतलाया गया हैं, कि हमें ५०११००००० रतल सूत की आवश्यकता है, परन्तु अभी हाथ का सूत मिलोंके सूत से मोटा होता है। अतः इस सूत के एक रतल में चार गज़ कपड़ा नहीं बन सकता, यदि तीन गज़ भी बना तो १२५२००००० रतल सूत के स्थान में हमें १७०००००० रतल सूत की आव-

श्यकता होगी और यदि एक चरखे से तीस रतल सूत प्रति वर्ष निकला तो १७००००००० रतल सूत निकालनेके लिये हमें ५६६६६६६६ रहटों की आवश्यकता पड़ेगी।

बेज़वाड़ा की कांग्रेस कमेटी के प्रोग्रामके अनुसार इस समय कांग्रेस के सदस्यों की संख्या लगभग १००००००० हो चुकी है। यदि इन सदस्यों में से आधे भी फुरसत के समय सूत कातें तो उपर्युक्त रहटें सरलता से चल सकते हैं। बेज़वाड़ा की कांग्रेस कमेटी के कार्य्यक्रम के अनुसार २०००००० रहटे तो इस समय चल ही रहे हैं। महात्मा गांधीजी का तो अनुमान है, कि इस से दूने अर्थात् ४०००००० रहटे चल रहे होंगे। जिस प्रकार का उत्साह अभी रहटों के प्रचार की ओर है, उस से स्पष्ट विदित होता है, कि बहुत थोड़े समय में रहटों की पूर्ति हो जावेगी।

करघा।

उपर्युक्त सूत का कपड़ा तैयार करने के लिये, हमें यह देखना है, कि कितने करघों की आवश्यकता होगी।

जुलाहोंसे पूंछने पर मालूम होता है, कि वे एक करघे से एक सप्ताह में कुल २० गज़ कपड़ा सुविधापूर्व्वक तैय्यार कर सकते हैं। इस हिसाब से प्रतिवर्ष एक करघे से लगभग १००० गज़ कपड़ा तैयार होता है। अतः उपरोक्त ५०११००००० गज़ कपड़े के लिये लगभग ५०००० करघों की आवश्यकता होगी।

भारतवर्ष में पहले जुलाहों का रोजगार कितना बढ़ा हुआ था, यह सभी जानते हैं। यहां पर मिलों की वृद्धि हो जाने के कारण तथा विदेशी माल के अधिक आने के कारण यह व्यवसाय दिन पर दिन घटता गया। परन्तु अब भी जुलाहों की संख्या यहां कम नहीं है। जो अपना रोजगार छोड़ कर दूसरा काम करने लगे हैं! जब कि अभी भी यहां पर लगभग ६०००००००० गज कपड़ा करघों से तैयार होता है तो उत्तेजना देने पर हमें ५०११००००० गज कपड़ा और तैयार करने के लिये ५०००० करघों का चलना और चलानेवाले जुलाहों का मिलना कठिन नहीं है।

इसके अतिरिक्त दो उपाय और भी हैं। जिनसे

कि करघों की पूर्ति सरलता से हो सकती है। एक यह है, कि इस कार्य के लिये हमारे व्यवसायी भाई अग्रसर हों। उन्हें चाहिये कि बिलायती कपड़े का रोजगार छोड़ कर इसी कार्य को व्यवसाय की दृष्टि से करें। जो व्यापारी इस कार्य को करें, उन्हें करघों के व्यवसाय की कम्पनियां स्थापित करनी चाहिये। जो कि करघों द्वारा कपड़ा बनवा कर थोड़े मुनाफें पर बेचें। जो व्यापारी विदेशी कपड़े के रोजगार में इस समय लाखों रुपयों की पूंजी लगा रहें हैं, क्या वे देश की इस मांग पर ध्यान देकर इस कार्य के लिये आगे नहीं बढ़ैंगे, जिसमें उनके स्वार्थ और परमार्थ दोनों सधते हैं? दूसरा उपाय यह है कि रहटों के समान ही करघों का भी घर घर में प्रचार हो और अवकाश के समय लोग अपने अपने घरों में कपड़ा भी बुने। अस्तु।

उपर्युक्त विवरण से यह सिद्ध हो जाता है कि यदि हम चाहें, तो सरलता पूर्वक विदेशी कपड़े का बहिष्कार कर सकते हैं। बहिष्कार ही नहीं हमारे यहां की जनसंख्या इतनी है और साथ ही रुई भी इतनी अधिक होती है कि उपरोक्त प्रणाली से यदि

हम उत्तरोत्तर इस व्यवसाय की वृद्धि करते जायं तो अपनी आवश्यकता से भी कहीं अधिक कपड़ा तैयार कर सकते हैं और इस दरिद्र देश को इसी व्यापार द्वारा धनी बना सकते हैं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस समय हम थोड़ा सा त्याग स्वीकार करें। हमारे व्यवसायी भाइयों को इसके लिये अपने अपने व्यक्तिगत लाभों को बलि कर बड़े बड़े आफिसों की दलाली और मुसद्दीगिरी छोड़ बड़े-बड़े विदेशी कपड़ों की दूकानें, स्वदेशी कपड़ों से पवित्र करना होगा। मिल के मालिकों को अधिक लालच छोड़ देश के दरिद्र निवासियों के लिये हृदय में कुछ दया का भाव ला सप्लाई डिमाण्ड के कठोर सिद्धान्त को त्यागना चाहिये। अमीर पुरुषों को मलमल और नैनसुख के झूठे सुखको तिलाञ्जलि देकर पवित्र खादी में सुख मानना होगा और अमीर स्त्रियों को चीन और जापान का मुलायम रेशम त्याग अपने हाथ के कते हुए सूत की खादी में कोमलता का अनुभव करना होगा। साथ ही साधारण जनता को भी अपवित्र विदेशी वस्त्रों का त्याग कर स्वदेशी के व्यवहार का व्रत लेना होगा।

इस आन्दोलन में हमारे मध्यप्रान्त और बरार वालों को तो सबसे आगे आना चाहिये क्योंकि भारतवर्ष में सबसे अधिक कपास की खेती यहीं होती है। सारे देशमें जो २२५०००००० एकड़ के लगभग भूमिमें कपास बोया जाता है, उसमें ४१५००००० एकड़ के लगभग जमीन केवल इन्ही प्रान्त में बोई जाती है। सूत और कपड़े तैयारी करनेका इस प्रान्त को बड़ा भारी गौरव है। सूत की तैयारी में इस प्रान्त का चौथा नम्बर है और कपड़े की तैयारी में तो बम्बई को छोड़ कर और कोई प्रान्त इसका मुकाबिला ही नहीं कर सकता। अर्थात् भारतवर्ष भर में इसका दूसरा नम्बर हैं। सन १९१३-१४ और १९१८-१९ तथा १९१९-२० में इस प्रान्त में जितना सूत तैयार हुआ और जितना कपड़ा बुना गया उसका हिसाब नीचे दिया जाता है:—

नक्शा नम्बर ६ मध्यप्रान्त और बरार में
तैयार किये गये सूत और कपड़े का हिसाव

सन	सूत (रतल में)	(कपड़ा गजोंमें)
१९१९-२०	३६५३२८७०	५१३०६७२५
१९१८-१९	३४२७९९४६	५९२८०६८८
१९१३-१४	२४१८४४७२	६३७५६७९९

इसके अतिरिक्त यह प्रान्त बड़ी बड़ी विदेशी कपड़े की आढ़तों आफिसों से भरा हुआ भी नहीं है और न बड़े बड़े विदेशी कपड़े के दूकानदार और दलाल ही यहां हैं। ऐसी दशा में यदि यह प्रान्त इस कार्य में पीछे रहे तो इससे अधिक खेद की बात और क्या हो सकती है। मुझे पूर्ण आशा है कि इस प्रान्त के निवासी इस आन्दोलन को सफल करने में कोई बात उठा न रखेंगे।

बम्बई की आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने इस कार्य की पूर्त्ति के लिये ता० ३० सितम्बर नियुक्त की थी। जिस थोड़े समय में देश ने स्वराज्य-फण्ड की पूर्त्ति की थी उसे देखते यह समय यथेष्ट था। मुझे पूर्ण आशा थी कि मध्य प्रान्त और बरार यह कार्य निश्चित समय के भीतर ही समाप्त करेगा। परन्तु कई कारणोंवश इस आशा की पूर्त्ति न हो सकी।

पाठकों को उपर्युक्त हिसाब के पढ़ने से अच्छी तरह विदित हो गया होगा कि हम लोग विदेशी वस्त्रों का वहिष्कार कर चरखे की सहायता से सुविधापूर्वक ३० करोड़ भारतवासियों के लिये

आवश्यक कपड़ा तैयार कर सकते हैं। यदि महात्मा गान्धी का अनुमान ठीक है और इस समय भारत-वर्ष में नित्य ४० लाख चरखे चल रहे हैं, तो हम उस दिन के आगमन की शीघ्र ही आशा कर सकते हैं, जिस दिन भारतवर्ष में एक पाई का भी कपड़ा न आकर यहीं का बना हुआ कपड़ा सब के शरीरों पर सुशोभित होगा। जिस रोज भारतवर्ष इस परावलम्बिता की शृङ्खला से मुक्त हो जायगा उसी रोज हमको असहयोग-आन्दोलन-वृक्ष के सुस्वादु, मधुर और मनोहर फल का स्वाद चखने को मिलेगा।

इस अमृत-तुल्य स्वादिष्ट फल का स्वाद लेने पर ही हम स्वतन्त्रता देवी के विशाल पवित्र मन्दिर में प्रवेश करने के अधिकारी बनेंगे। भारतवर्ष अति शीघ्र स्वतन्त्र होने के लिये इस कारण उतावला हो रहा है कि उसे कतिपय महान् और महत्व-शाली कार्य करना है। यदि वह शीघ्र ही स्वतन्त्र नहीं होता तो समस्त मानव-सृष्टि एक अदृश्य भयंकर चट्टान से टक्कर खाकर ध्वंस हुई जाती है। इस समय विशेष कर पश्चिमी संसार तो प्रकृति के अलौकिक और सच्चे उन्नति के मूल मन्त्र को

न समझ कर बिलकुल अँधेरे में भटक रहा है। ऊपर की चटकमटक, जीवहन्ता वैज्ञानिक कला-कौशल का आविष्कार, पाशविक शक्ति द्वारा न्याय, सत्य और आत्मिक शक्ति का दमन और मायावी सांसारिक सुखों को उसने वास्तविक सांसारिक सुख और मोक्ष का प्रधान मार्ग समझ रखा है। भारतवर्ष शीघ्र ही स्वतन्त्र होकर इसको बतलावेगा कि मनुष्य की आत्मा में ईश्वर की ज्योतिर्मय शक्ति विराज रही है, इसी आध्यात्मिक शक्ति का उपासक बनना, इसी की सेवा में, भौतिक जड़वाद की चटक-मटक को तुच्छ समझ, अभङ्ग समाधि लगाकर तल्लीन हो जाना और इसी को सुखी कर संसार के समस्त सुखों का अनुभव करना ही मानव-सृष्टि का प्रधान कर्त्तव्य है। मनुष्य में ईश्वर की साक्षात् शक्ति के अस्तित्व का अनुभव कर इसको किसी भी प्रकार कुचलने का व्यर्थ, प्रयत्न न करना और इसकी सदा-सर्वदा रक्षा करते हुए उन्नति और मोक्ष का द्वार खोलना है। प्यारे पश्चिम संसार निवासियो! ईश्वर की इस अलौकिक सृष्टि में प्रेम, सत्य और न्याय के साम्राज्य को अटल और अजेय समझ कर इसके

विरुद्ध किसी प्रकार के कार्य करने को धृष्टता मत करो। इससे कभी टकरा कर अपनी तुच्छ शक्ति की परीक्षा लेने का दुस्साहस और निरर्थक-प्रयास मत करो। इसमें तुम्हारी अवश्यम्भावी हानि है और तुम्हारी हानि से समस्त मानव-संसार की हानि है। ईश्वर भारतवासियों को शीघ्र ही स्वतन्त्र बना, उन साधनों का द्वार खोल दे, जिनके द्वारा भारत-वर्ष का बच्चा बच्चा मानव-संसार की उचित सेवा कर सके और भटके हुओं को सन्मार्ग में लाने का सुअवसर और सौभाग्य प्राप्त कर सके।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

सुलभ ग्रन्थ-प्रचारक मण्डलकी

चुनी हुई पुस्तकें ।

प्रेमकान्त

जगत्प्रसिद्ध अंग्रेज महाकवि "गोल्ड स्मिथ" के विश्वविख्यात उपन्यास विकार आफ वेक। फील्ड (Vicar of Wake Field) का प्रख्यात हिन्दी-लेखक पं० ऋषीश्वरनाथजी भट्ट बी० ए० एल० एल० बी० कृत सरस सरल एवं ओजस्विनी भाषामें अनुवाद। कष्ट पड़ने पर मनुष्य अपनी भद्रता भूलकर किस तरह अन्यायपूर्ण नीच उपायोंका अवलम्बन ग्रहण करता है, अपनी अवस्थासे अधिक सम्पन्न दिखाई देनेके लिये थोथे आडम्बरोंका सहारा लेनेसे स्त्रियां किस प्रकार हास्यास्पद होती हैं, मेलों-ठेलोंमें ठग-बदमाश किस प्रकार भोले लोगोंकी आंखों में दिन दहाड़े धूल झोंकते हैं, परोपकारी पुरुष दूसरोंको दुष्टोंके चंगुलसे छुडानेके लिए किस प्रकार प्रसन्नता पूर्वक अपनी जान जोखिममें डाल देते हैं, स्त्रियोंकी अत्यधिक वाचालता कैसी अनिष्टकारी होती है, नाना प्रकार संकटोंसे घिरे रहनेपर भी ईश्वरमें आस्था रखने वाले कैसी अलौकिक शान्तिका उपभोग कर सकते हैं आदि आदि बातोंका समावेश इसमें बड़ी

उत्तमतासे किया गया है और मनोभावोंका स्वाभाविक विकाश तथा उनके पारस्परिक आघात प्रतिघात बड़ी खूबी से दिखाये गये हैं, अंगरेज विद्वानोंका तो यहां तक कहना है, कि जिसने गोल्डस्मिथका यह उपन्यास नहीं पढ़ा उसने अंग्रजी साहित्यका मजा ही नहीं पाया। बढ़ियाँ मोटे एण्टिक कागजपर छपी हुई सुनहले अक्षरोंसे नामांकित सुन्दर मजबूत जिल्द युक्त पुस्तकका मूल्य केवल १॥) महसूल अलग।

भाग्य-चक्र

भाग्यचक्र हिन्दी-साहित्य-जगतके सामाजिक उपन्यासगगनका सूर्य है। इसमें पाप और पुण्य, न्याय और अन्यायकी प्रतिद्वन्द्विताका और उसके परिणामोंका बड़ा ही मनोरम खाका खींचा गया है। भाग्य और पुरुषार्थके द्वन्द युद्धका ऐसा सजीव चित्र और कहीं मिलना असम्भव है। पापके अवश्यम्भावी रोमाञ्चकारी परिणामके दिग्दर्शन द्वारा मनुष्योंकी पापसे घृणा कराकर पुण्य-पथकी ओर अग्रसर करने के लिये इसके समान और पुस्तक नहीं। पृष्ठ संख्या पौने तीनसौ। मूल्य १॥) रु० महसूल अलग

सचित्र भीम-चरित्र

यह पांचों पाण्डवोंमें सबसे अधिक बलवान उन्हीं भीम सेनकी सचित्र जीवन-कथा है जो बड़ेसे बड़ा हाथी पूंछ पकड़कर खिलौनेकी तरह उठा लेते थे और जिनकी गदाकी मारसे बड़ेसे बड़े राक्षसोंके छक्के छूट जाते थे। भीमसेनके अलौकिक पराक्रमके सम्बन्धमें अधिक कुछ न कहकर यही कह देना यथेष्ट है कि भगवान श्रीकृष्ण इन्हें "भीमकर्म्मा वृकोदर" कहा करते थे। हास्यमिश्रित वीररसकी इस अद्वितीय पुस्तकको पढ़कर आपके हृदयमें वीररसका चार हुए बिना रह नहीं सकता। दाम ॥।=) म० अलग

गृहिणी-कर्तव्य

छपाई, सफाई, कागज और बँधाई अत्यन्त मनोहर। पृष्ट-संख्या पौने तीनसौ और दाम केवल १॥।)

इस एक ही पुस्तकको पढ़कर स्त्रियां गृहस्थी सम्बन्धी प्रायः समस्त कर्त्तव्योंको जान जायेंगी। सतीत्वकी महिमा, गृहस्थीकी जिम्मेदारी, समयकी उपयोगिता, अकर्म्मण्यताके दोष, अतिथि-अभ्यागतोंकी सेवा और उसका महत्व, फजूल खर्चीके

अवगुण अर्थ संचयका उपाय भोजनकी विधि, बच्चों का पालन, उनकी शिक्षा तथा उनका चरित्र गठन, ससुर, सास, जेठानी, देवरानी, ननद तथा पुत्रवधू आदि समस्त परिवार वर्गके प्रति कर्त्तव्य और पतिकी सेवा आदि अगणित विषयोंका वर्णन बड़ीही सुन्दर और सहज रीतिसे किया गया है। शीघ्र मँगाइये नहीं तो फिर दूसरे संस्करणकी बाट जोहनी होगी, क्योंकि इसकी अब बहुत थोडी प्रतियां रह गई हैं।

कपाल कुण्डला

बंगालके गौरव-स्तम्भ, सर्वश्रेष्ठ, और अद्वितीय उपन्यास लेखक स्वर्गीय बंकिमचन्द्र चटर्जीके लिखे हुए उपन्यासोंमें यह उपन्यास सर्वश्रेष्ठ है। बंकिम बाबूके उपन्यासोंकी प्रशंसा करना मानों सूर्यको दीपक दिखाना है। संसारके छलछद्म रहित व्यक्तिकी सरलता कैसी लोकोत्तर आनन्द प्रदायिनी होती है, तथा पाषाण हृदय निष्ठुर व्यक्तिका स्वार्थ-पूर्ण हृदय भी प्रेमका वशवर्ती होकर कैसा निःस्वार्थ होजाता है। यदि यह जानना हो और रस और अलंकारके सागरमें गोता लगाना हो तो इस गद्यकाव्यको अवश्य पढ़िए। मूल्य ॥=) दस आने।

ॐ

कर्म्मक्षेत्र

सांसारिक झंझटोंके कारण जिन्हें संसार दुःखमय प्रतीत होता हो तथा सांसारिक विघ्नबाधाओंके कारण जिन्हें अपना जीवन भार हो उठा हो उनके हतोत्साह जीवनमें नवजीवन संचार करनेका अमूल्य साधन है। इसमें (१) शक्तिपरिचय (२) संकल्प (३) साधना और (४) सिद्धि इन चार विषयोंपर चार विवेचनापूर्ण निबन्ध हैं, जिनमें गौतमबुद्ध महाराणा प्रताप, चाणक्य प्रभृति प्राचीन तथा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, दीवान सर माधव राव, सर जमसेदजी जीजी भाई आदि अर्वाचीन प्रसिद्ध प्रसिद्ध महापुरुषोंकी जीवन-घटनाओं से चुने हुए दृष्टान्तों द्वारा यह समझानेका प्रयत्न किया गया है, कि छोटे-बडे, धनी-दरिद्र, प्रायः प्रत्येक मनुष्यमें अमोघ इच्छा-शक्ति है और संकल्प दृढ़ करके अध्यवसाय पूर्व्वक साधना करनेसे प्रत्येक मनुष्य सिद्धि लाभकर सकता तथा असंभवको भी संभव कर दिखला सकता है। मुमूर्षु-प्रायः वृद्ध भारतवर्षके अभ्युत्थानमें यह पुस्तक 'चन्द्रोदय'का काम करेगी। अमृत बाजार पत्रिका, बंगाली, संजीवनी, वामाबोधिनी, हितवादी, विहारहेरल्ड आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र पत्रिकाओंने इसकी प्रशंसा मुक्तकंठसे की है। स्वदेशकी तथा अपनी

भारतकी साम्पत्तिक अवस्था ।

लें० प्रो० राधाकृष्ण झा, एम० ए०

यह पुस्तक भारतके आये दिनके अकाल, दरिद्रताका हाल, भारतकी सम्पत्तिको विलायतके कोठीवालोंके ढो ले जानेकी चाल, कर एक्सचेञ्ज, सोना, चांदी, हुंडाकी बिक्री, उसकी नीति, उससे हमारे दिन प्रतिदिन गरीबीके गढ़े में गिरते जानेका रोमांचकारी वर्णन वाणिज्य, मजदूरों, किसानोंकी, अवस्था तथा वाणिज्य व्यापार सम्बन्धी सरकारी नीति इत्यादि जाननेका सर्वोत्तम साधन है। प्रो० यदुनाथ सरकार सरीखे महानुभावका कहना है भारतकी किसी भी भाषामें ऐसा उत्कृष्ट और उपकारी ग्रन्थ अबतक नहीं छपा। मूल्य २॥)

मिलनेका पता—

सुलभ ग्रन्थ-प्रचारक मण्डल ।

१३ शङ्कर घोष लेन, कलकत्ता ।